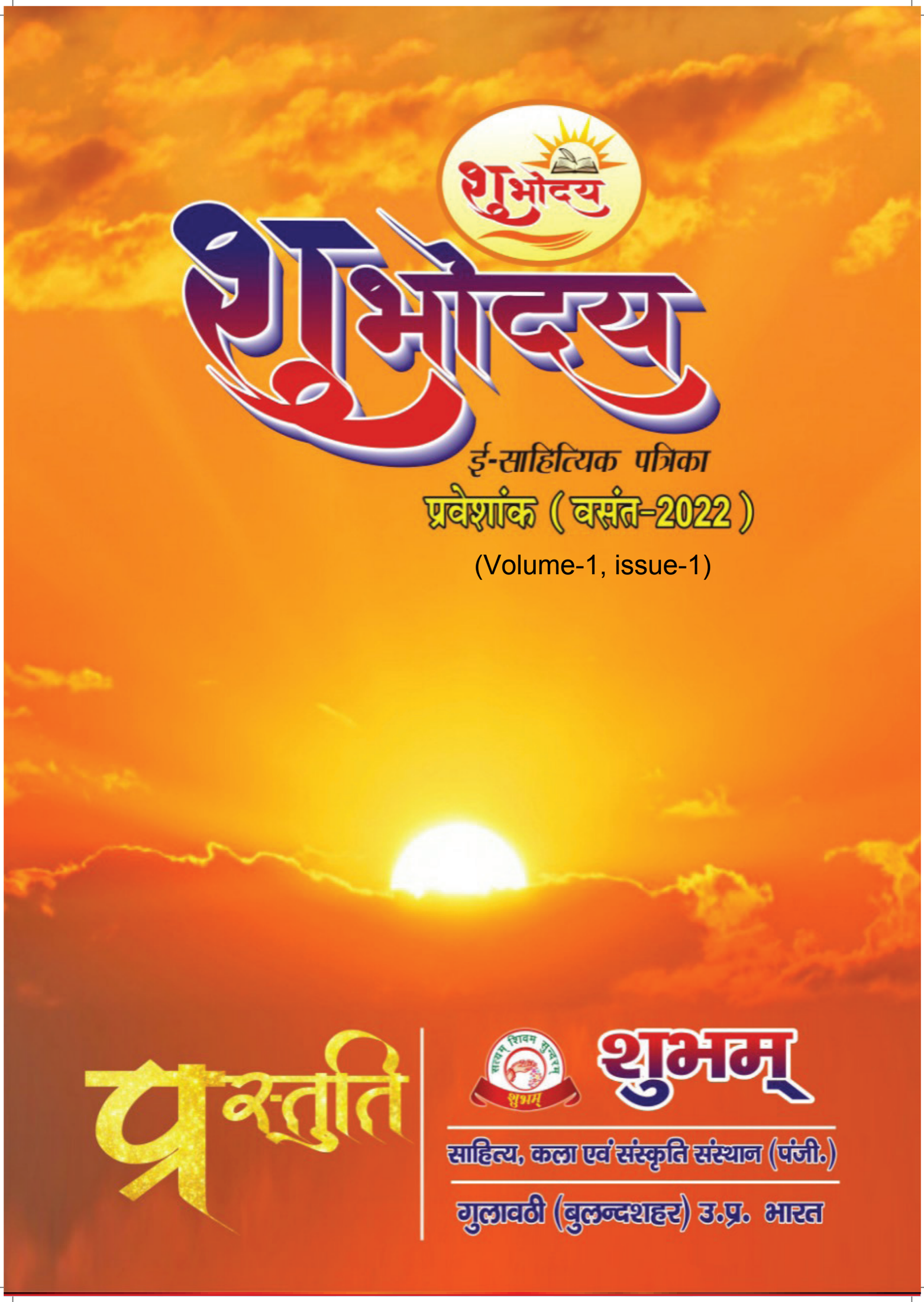

शुभोदय

ई-साहित्यिक पत्रिका

प्रवेशांक (वसंत-2022)

(Volume-1, issue-1)

प्रस्तुति

शुभम्

साहित्य, कला एवं संस्कृति संस्थान (पंजी.)

गुलावठी (बुलन्दशहर) उ.प्र. भारत

(Volume-1, issue-1)

शुभोदय

ई-साहित्यिक पत्रिका (अर्द्धवार्षिक)
ईमेल: shubhodayashubham@gmail.com

प्रवेशांक : (वसंत 2022)

संरक्षक
डॉ. कमल किशोर गोयनका
पूर्व उपाध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, भारत सरकार

प्रोफेसर महावीर सरन जैन
पूर्व निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, भारत सरकार

प्रधान संपादक
डॉ. देवकीनन्दन शर्मा
मोबाइल - 9837573250

संपादक
डॉ. ईश्वर सिंह
मोबाइल - 9899137354

सह संपादक
मुकेश निर्विकार
डॉ. नीलम गर्ग
डॉ. ब्रजराज यादव

प्रस्तुति
'शुभम्'
साहित्य, कला एवं संस्कृति संस्थान (पंजीकृत)
गुलावठी (बुलन्दशहर), उत्तर प्रदेश, भारत

डिज़ाइन
त्रिगुण कुमार झा
मो. : 9810679648

'शुभोदय' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार रचनाकारों के हैं, उनसे 'संपादक मंडल' की सहमति होना अनिवार्य नहीं है।

'शुभोदय' अनुक्रमणिका

संदेश

1. डॉ. कमल किशोर गोयनका
2. प्रो. महावीर सरन जैन

संपादकीय

3. प्रधान संपादक की कलम से
4. संपादक की कलम से

कविता/गीत/ग़ज़ल

5. डॉ. योगेन्द्र दत्त शर्मा 10
6. बी. के. वर्मा शैदी 11
7. जगदीश 'पंकज' 12
8. संजय शुक्ल 13
9. अश्वघोष 14
10. डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ 15
11. डॉ. रमा सिंह 16
12. योगेन्द्र कुमार 17
13. डॉ.दिनेश पाठक'शशि' 18
14 प्रगीत कुँवर 19
15. मृत्युंजय साधक 20
16. डॉ. अंजु सुमन साधक 21
17. मधु वार्ष्णेय 22
18. अलका शर्मा 23
19. सुधा गोयल 24
20. प्रेम कुमार शर्मा 25
21. ऋषभ शुक्ला 26
22. डॉ चन्द्रकान्ता सिंघल 27
23. शिशिर शुक्ला 28
24. भानु त्रिवेदी 29
25. डॉ. ब्रजराज ब्रजेश 30
26. नरेश चंद 31
27. डॉ. शोभा रतूड़ी 32
28. विनय कुमार दुबे 33
29. डॉ. दुर्जन प्रसाद 'दिनेश' 34
30. डॉ. बिंदु कर्णवाल 35
31. डॉ. रानी कमलेश अग्रवाल 36
32. डॉ. राकेश अग्रवाल 37

लेख / व्यंग्य

33. डॉ. देवकीनन्दन शर्मा 38
34. डॉ. टी महादेव राव 41
35. डॉ. ईश्वर सिंह 43
36. विपिन कुमार जैन 47
37. रजनी सिंह 49

संस्मरण

38. विनय शुक्ला 50
39. संदीप कुमार सिंह 51

कहानी / लघु कथा

40. मुकेश निर्विकार 53
41. डॉ. प्रभाकर जोशी 55
42. डॉ. नीलम गर्ग 57
43. शिशिर शुक्ला 60
44. सरिता गुप्ता 61

शुभोदय

वर दे...

वर दे, वीणावादिनि वर दे,
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

काट अंध-उर के बंधन-स्तर,
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे,
वर दे, वीणावादिनि वर दे,
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

नव गति, नव लय, ताल-छंद नव
नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव,
नव नभ के नव विहग-वृंद को,
नव पर, नव स्वर दे,
वर दे, वीणावादिनि वर दे,
वर दे, वीणावादिनि वर दे,
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

– सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(Volume-1, issue-1)

सदेश

बुलंदशहर और उससे संबद्ध गुलावठी इधर हिंदी साहित्य-संसार में अपनी पहचान बनाने में सफल हुए हैं। बुलंदशहर की पहचान इसकी कृषि तथा भारतीय सेना में अपने योगदान के कारण होती रही है, परंतु अब साहित्य के क्षेत्र में भी बुलंदशहर का नाम राष्ट्रीय मंच पर लिया जाने लगा है। बुलंदशहर से 'बुलंदप्रभा' त्रैमासिक पत्रिका निकल रही है और गुलावठी के डॉ. देवकीनन्दन शर्मा तीन दशकों से 'शुभम्' साहित्य कला संस्कृति संस्थान के द्वारा इस अंचल में अपना योगदान देते रहे हैं और अब इस संस्थान से 'शुभोदय' पत्रिका का शुभारंभ हो रहा है। हिंदी संसार के लिए यह शुभ समाचार है और आंचलिक लेखकों के लिए भी कि उन्हें एक और पत्रिका में छपने का अवसर मिलेगा और वे राष्ट्रीय मंच पर स्थापित हो सकेंगे। पत्रिका का नाम 'शुभोदय' है और जिसका अर्थ है शुभ का उदय। मुझे विश्वास है कि 'शुभोदय' से बुलंदशहर अंचल के युवा लेखकों का तो शुभ होगा ही, हिंदी साहित्य भी समृद्ध होगा। 'शुभोदय' के संपादक मंडल तथा 'शुभम्' संस्थान को मेरी शुभकामनाएं।

डॉ. कमल किशोर गोयनका
पूर्व उपाध्यक्ष,
केंद्रीय हिंदी संस्थान,
भारत सरकार

सदेश

'शुभम्' साहित्य कला संस्कृति संस्थान गुलावठी बुलन्दशहर(उत्तर प्रदेश) अपनी जीवन- यात्रा के 31वें वर्ष में ई- पत्रिका'शुभोदय' आरम्भ कर रहा है; यह मेरे लिए परम संतोष का कारक है। वस्तुतः 'शुभम्' ने अपनी सकारात्मक सोच और रचनात्मककार्य शैली से बुलन्दशहर जनपद में नई सृजना के परिवेश को मूर्तिमान किया है।

मुझे विश्वास है कि 'शुभोदय' भी अपनी सजल संचेतना से साहित्य को समृद्ध करते हुए अध्येताओं का मार्ग दर्शन करेगी।

मेरी मंगल कामनाएं है, 'शुभोदय 'का पथ प्रशस्त से प्रशस्तर हो।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन
पूर्व निदेशक,
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान
भारत सरकार

प्रधान संपादक की कलम से...

'अर्थ कल लेंगे हमारे आज के संकेत'

भारत ... पश्चिमी उत्तर प्रदेश ... जनपद बुलन्दशहर का ग्रामीण अंचल से घिरा छोटा-सा नगर गुलावठी... यद्यपि इसका अतीत स्वतंत्रता संग्राम की प्रथम क्रान्ति 1857 से जुड़ा है और कृषि एवं रक्षा के क्षेत्र में स्मरणीय योगदान रहा है, तथापि सांस्कृतिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय उपलब्धि इसके पास नहीं है। ऐसे नगर में 'हिन्दी दिवस' - 14 सितम्बर 1991 को 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' का परचम थामकर 'शुभम्' साहित्य, कला एवं संस्कृति संस्थान ने संवेदन शून्य, मूल्यहीन, सांस्कृतिक प्रदूषण और राष्ट्रप्रीति के दारिद्रय के दौर में अपनी साहित्यिक, कलात्मक एवं सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण–संवर्धन का व्रत अंगीकार किया। जाति, धर्म, संप्रदाय, भाषा और प्रांत के द्वेषों में बँटे समाज और राष्ट्र को निरन्तर आगाह ही नहीं किया, बल्कि मनसा-वाचा-कर्मणा स्वच्छ वैचारिक परिवेश और स्वस्थ जीवन–दर्शन के निर्माण में स्वयं को अहेतुक समर्पित भी किया।

'शुभम्' ने अपने तीस वर्ष की जीवन-यात्रा में अनेकानेक सफल विचार गोष्ठियों, कवि-सम्मेलनों, कौशल प्रतियोगिताओं, सांस्कृतिक संध्याओं, शोध सभागमों, समाजोपयोगी शिविरों तथा सम्मान समारोहों आदि से अपनी एक पहचान राष्ट्रीय फलक पर बना ली है। इतना ही नहीं, स्मारिकाओं ('उत्कर्ष', 'वन्देमातरम्', उपलब्धि; 'शुभायन' और 'शुभाम्बरा'), ग्रन्थों (कभी फूल कभी शूल', 'भवानी प्रसाद मिश्र : दृष्टि और सृष्टि; 'गाँधी दर्शन और हिन्दी साहित्य' तथा 'हम और हमारी हिन्दी') एवं कोरोना काल की विशेष प्रस्तुति 'मुस्कराएगा इंडिया' ने साहित्य-इतिहास में 'शुभम्' की कथनी-करनी को दर्ज कर दिया है।

साहित्य, कला और संस्कृति के लिए अनवरत सक्रिय और समर्पित 'शुभम्' ने एक नई पहल करते हुए भारतीय स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव की पावन बेला में 'शुभोदय' ई-साहित्यिक पत्रिका का शुभारम्भ करने का निर्णय लिया है। 'शुभोदय' प्रतिष्ठित कलमकारों से आशीर्वाद एवं मार्ग-दर्शन लेते हुए नवोदित रचनाकारों को प्रोत्साहित करने के साथ विश्व शांति, राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक उन्नयन, सामाजिक समरसता और समसामयिक सरोकारों के स्वस्थ विमर्श हेतु एक अनुशासित मंच बनने के लिए कृत संकल्प है।

हम अत्यंत सौभाग्यशाली हैं, 'शुभोदय' को अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध विभूतियों सम्मानीय डॉ. कमल किशोर गोयनका एवं प्रोफेसर महावीर सरन जैन का संरक्षण प्राप्त हुआ है। हमें विश्वास है, सुधी सृजनधर्मियों का उत्साहवर्धक सहकार 'शुभोदय' का पथ सुगम ही नहीं, स्वर्णिम बनायेगा।

'शुभोदय' का प्रवेशांक (वसंत अंक) साहित्यानुरागियों को सौंपते हुए चिरस्मरणीय दुष्यंत कुमार की पंक्तियां मेरे मानस पटल पर दस्तक दे रही हैं –

"क्या हुआ जो युग हमारे आगमन पर मौन?
सूर्य की पहली किरन पहचानता है कौन?
अर्थ कल लेंगे हमारे आज के संकेत।"

"श्रीमत्कुंज विहारणै नमः"

डॉ. देवकीनन्दन शर्मा
प्रधान सम्पादक

संपादक की कलम से...

पिछले 30 साल से 'शुभम' संस्थान के बैनर तले, ग्रामीण अंचल से घिरे, गुलावठी शहर में सहित्यिक, सांस्कृतिक और कलात्मक गतिविधियों का आयोजन होता रहा है, जिसको समाज के सभी वर्गों से समर्थन और सराहना मिली है। एक अर्से से इन साहित्यिक गतिविधियों को सँजोने और साहित्य जगत में प्रस्तुत करने के लिए एक साहित्यिक पत्रिका की कमी को बहुत ही शिद्दत के साथ महसूस किया जा रहा था। इसी कमी को पूरा करने के लिए प्रस्तुत साहित्यिक ई-पत्रिका 'शुभोदय' साहित्य जगत में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने जा रही है।

अंधकार है वहां जहां आदित्य नहीं है
मुर्दा है वह देश जहां साहित्य नहीं है

'आवश्यकता आविष्कार की जननी है', इसीलिए गुलावठी के प्रबुद्ध और जीवंत नागरिकों की आआकांक्षाओं के अनुरूप 'शुभोदय' का पहला अंक ई-पत्रिका के रूप में आप सभी के कंप्यूटर और मोबाइल स्क्रीन पर उपलब्ध है।

'शुभोदय' के प्रवेशांक में आपको कविता, कहानी, संस्मरण, लघुकथा, गीत, ग़ज़ल, समसामयिक विषयों पर लेख और व्यंग्य आदि विभिन्न विधाओं का रसास्वादन करने को मिलेगा। भविष्य में पुस्तक समीक्षा और प्रबुद्ध पाठकों के अभिमत भी इसमें शामिल करने की योजना है। 'शुभोदय' अर्द्धवार्षिक ई पत्रिका होगी। इसके अंक भारतीय ऋतु क्रमानुसार वसंत और शरद में प्रकाशित होंगे।

'शुभोदय' को डॉ कमल किशोर गोयनक और प्रो. महावीर सरन जैन जैसे प्रबुद्ध साहित्यकारों का संरक्षण प्राप्त है, जो संपादक मंडल के लिए अत्यंत गर्व और गौरव का विषय है। हम हृदय तल से उनके आभारी हैं। जिन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से 'शुभोदय' के प्रवेशांक को ऊर्जा और गरिमा प्रदान की है, उनके प्रति भी हम आभार ज्ञापित करते हैं।

बेहद विनम्रता पूर्वक 'शुभोदय' का प्रथम अंक सभी प्रबुद्ध पाठकों के हाथों में सौंपते हुए यह निवेदन है कि आप अपनी प्रतिक्रियाओं से हमें अवश्य अवगत कराएं ताकि हम आपकी अपेक्षाओं के अनुरूप 'शुभोदय' को उत्तरोत्तर ऊंचाइयाँ प्रदान कर सकें।

डॉ. ईश्वर सिंह
संपादक

डॉ. योगेन्द्र दत्त शर्मा
कविनगर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. 9311953571

नया साल

जश्न तो करते, मगर ख़ूब मुक़द्दर निकला!
हर नया साल गये साल से बदतर निकला!

ऐन मौक़े पे दग़ा देके रक़ीबों से मिला
जिसको हमराज़ बनाया, वो सितमगर निकला!

मैंने तो हाथ बढ़ाया था सुलह की ख़ातिर
हाथ उसका भी बढ़ा, हाथ में ख़ंजर निकला!

मुझको हर वक़्त इशारों पे नचाता वो रहा
रहनुमा समझा मैं उसको, वो कलंदर निकला!

दोस्त कहता था, मगर जब भी मिला हूं उससे
वो न मुस्काया, न वो खोल से बाहर निकला!

मैंने हद पार न की, पर वो नहीं हद में रहा
मैंने दरिया उसे समझा, वो समंदर निकला!

मैंने की उससे दुआ, उसपे असर कुछ न हुआ
मैंने तो देवता माना था, वो पत्थर निकला!

वो मिला हंसता हुआ मुझको नुमाइशघर में
जब छुआ उसको, तो वो मोम का पैकर निकला!

चैन घर में न मिला, तो मैं बियाबां में गया
जिस बियाबां में गया, उसमें मेरा घर निकला!

अवज्ञा का स्वर

होंगे राजा आप, मगर यह
देश आपकी प्रजा नहीं है
हाथों में है राष्ट्र-पताका
कहीं आपकी ध्वजा नहीं है!

राजतंत्र, सामंत गये सब
आज देश में प्रजातंत्र है
सही-सही पहचान इसी की
स्वतंत्रता का मूलमंत्र है
सिंह भले हों आप, किन्तु यह
जनता कोई अजा नहीं है!

आप दहाड़ रहे हैं बेशक
सुदृढ़ दुर्ग की प्राचीरों से
संबोधित हैं राष्ट्र-नायकों
सेनानियों, परमवीरों से
मगर आमजन किसी दुर्ग का
छज्जा या बारजा नहीं है!

इसी आमजन ने कल शायद
जनसेवक आपको चुना था
और आपके माध्यम से ही
नये राष्ट्र का स्वप्न बुना था
भूल न जायें, इस जन-गण ने
स्वप्न अभी तक तजा नहीं है!

इस जन-गण को अश्व बनाकर
खूब कर रहे आप सवारी
समझ लिया है प्रतिनिधित्व को
स्यात आपने मनसबदारी
इस जन-गण ने देश-धर्म के
सिवा अन्य कुछ भजा नहीं है!

यह अपनी पर आ जाये, तो
सारा खेल उलट सकता है
यह बिसात को औंधा करके
बाजी तुरत पलट सकता है
जन-गण कोई खर या उस पर
मली गई अरगजा नहीं है!

खैर मनायें, इस जन-गण का
अश्व अभी तक नहीं अड़ा है
पारावार जनाकांक्षा का
सागर अभी नहीं उमड़ा है
अधिक दिनों तक ताज किसी भी
सिर पर अब तक सजा नहीं है!

बी के वर्मा शैदी
राजेन्द्र नगर, साहिबाबाद, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. 9871437552

मैं अकिंचन

मैं अकिंचन, घूरते क्यों?
क्या भला मुझमें विलक्षण?
कर्मयोगी, कर्मरत हूँ,
कर्म पर सर्वस्व अर्पण।।

बात मनभावन कहूँ मैं,
लक्ष्य जगभावन रहे क्यों?
लेखनी मेरी किसी आदेश-
निर्देशित बहे क्यों?
किस लिए शाश्वत बने,
निज और पर के मध्य घर्षण।

देखने, सुनने, समझने को
बहुत, दुनिया बड़ी है।
दृष्टि मुझ पर ही टिकाये बस,
किसी को क्या पड़ी है?
हूँ न भ्रमजीवी, रखा है सामने
हर वक्त दर्पण।।

धुन लगी हो, बस यही है
साधना की छवि निरंतर।
धुन वही है, कर्मरत हो,
हर घड़ी निष्काम हो कर।।
एक सीमा पर पहुँच,
निस्सार आकर्षण-विकर्षण।

स्वयं उद्घाटित करे निज मान को,
हो कृत्य ऐसा।
जो करे प्रतिभा उजागर स्वयं,
हो सामर्थ्य ऐसा।।
किसलिए बैसाखियाँ माँगूँ?
पगों पर जब नियंत्रण।।

हो अपरिचित या सुपरिचित,
किसलिए पड़ जाये अन्तर?
पार्थ तो थे पार्थ, चाहे
वृहन्नला थे या धनुर्धर।।
प्राथमिकता लक्ष्य-साधन,
सामने जब समर-प्रांगण।

क्यों बुलाये पुष्प? उसकी
गंध आकर्षित करेगी।
टिप्पणी क्या? सुघड़ रचना
स्वयं मन हर्षित करेगी।।
स्वर्ण तो है स्वर्ण, स्वर्णिम-
भाव में संलिप्त कण-कण।।

मोहिनी छवि का प्रदर्शक,
प्रकृति का हर दृष्य नट है।
लोग देखें या न देखें,
इंद्रधनु होता प्रकट है।।
देखना है जिन्हें, देखें,
क्यों किसी को दें निमंत्रण?

जगदीश 'पंकज'

राजेन्द्र नगर, साहिबाबाद ग़ाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. : 08860446774, 8851979992
ई मेल : jagdishjend@gmail.com

नवगीत (1)

कुछ कहकर कुछ कहने से
रह जाता है
संबोधन के बिना लिखे प्यारे
खत में

हर दिल की धडकन
संचालित होती है
सपनों के निष्प्राण
किसी संवेदन से
वही प्राणमय होकर
पुलक जगाती है
रिश्तों की गर्मी पाकर
संबोधन से
अभिवादन के शब्द
सिसकते रहते हैं
भूले-भटके, चलते-फिरते स्वागत में
परिचयहीन उक्तियाँ
बिछी हुई पथ पर
संवादों की बदली हुई
शैलियों में
आरोपों को धार लगाते
लोग मिले
संज्ञा-सर्वनाम से भरी
थैलियों में
सच कितना आहत
होकर चिल्लाता है
प्यार बदलता दीख रहा जब
नफरत में
खोज रही पहचान
सभ्यता दलदल में
जहाँ निकलने का कोई
आधार नहीं
नौसिखिये बैठे
नावों में दीख रहे
हाथों में जिनके कोई
पतवार नहीं

कुछ बहकर कुछ बहने से
रह जाता है
कितना कोई डूब रहा है गैरत में!

नवगीत (2)

जब द्वारे पर आगन्तुक के
स्वागत को मैं बाहर आया
देखा तो मेरा ही मुखड़ा
मुझसे मिलने मुझ तक आया !

जब उलटबाँसियों ने मन के
तारों को आ
झनझना दिया
अपने युग की अनुरूप प्रथा
ने भी मिलने से मना किया

आदर्श संहिता का पालन
करते-करते थक गया समय
आचरण हुआ संदिग्ध किसी
तिनके ने घर तक पहुँचाया !

यह नहीं जरूरी वह सब हो
जो रुचिकर लगे
दबंगों को
फिर विनयशीलता की भाषा
कैसे भाये बेढंगों को

अपनी पहचान भूलकर जब
पहुँचा दरबारी ड्योढ़ी पर
यह कैसा चमत्कार, किसने
पाँवों को वापस लौटाया !
कुछ घोषित हैं कुछ छिपे हुए
हर युग के निहित
प्रयोजन हैं
सत्ता की गलियों के अपने
अनुशासन हैं आयोजन हैं

जिसने तथ्यों को, कथ्यों को
तोड़ा-मोड़ा अपने हित में
उसने मिथ्या आरोप-पत्र
मेरे हाथों में पकड़ाया !

संजय शुक्ल
राजेन्द्र नगर, साहिबाबाद, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. : 8130438474
ईमेल : Sanjayshukla2510@gmail.com

आलापें विवश राग

हम वहाँ चले आए
जहाँ नहीं आना था !

अनहद स्वर डूब गया
शोर करें प्रखर द्वंद्व
बाहर है चकाचौंध
भीतर की ज्योति मंद
वे न टिमटिमाए भी
जिन्हें जगमगाना था !

बंद हुए छिद्रों की
बाँसुरी बजाते हैं
रंगों में रमे नहीं
ईसुरी न गाते हैं
आलापें विवश-राग
भूले जो गाना था !

जैसे हैं वैसे ही
यहाँ रह नहीं सकते
शुद्ध-बुद्ध-चिदानंद
स्वयम् को न कह सकते
ढूँढ नहीं पाएंगे
उसे, जिसे पाना था !

दिन-दिन होता विरूप
अपना परिवेश यहाँ
बदल-बदल दृष्टिकोण
दृष्टि शून्य शेष यहाँ
कहाँ अब निगाहें हैं
कहाँ तब निशाना था !

श्लोक भी हैं कठघरे में

दृश्य हैं कितने भयावह
बाढ़ में सब पुल रहे बह
डूबने को हैं शिकारे
डूबने को हैं !

क्या हुआ है इस नदी को
हर लहर उन्मादिनी है
सेतुओं से शत्रुता है
पुण्य घाटों से ठनी है
टूटने को हैं किनारे
टूटने को हैं !

कल हुआ निर्माण सम्भव
रक्त देकर, प्राण देकर
उठ रहे हैं हाथ अब
विध्वंस का संकल्प लेकर
लूटने को हैं नजारे
लूटने को हैं !

घिर रही आकाश में ये
बाहरी काली घटाएँ
आग को भड़का रही हैं
आन्तरिक बहकी हवाएँ
फूँकने को हैं शरारे
फूँकने को हैं !

झेलते प्रतिबंध हैं अब
आरती के स्वर सुरीले
श्लोक भी हैं कठघरे में
प्रार्थनाओं के रसीले
रूठने को हैं सितारे
रूठने को हैं !

अश्वघोष
देहरादून, उत्तराखंड
मो. : 9897700267

देखती रही है माँ

माँ तो है पर उसके भीतर
कतई नहीं बचा माँ-पन
खाट पर बैठी-बैठी वह
दिन भर देखती रहती है
निरंतर सूखती तुलसी
तिलक रहित
ठाकुर जी का सूना मस्तक
जहाँ-तहाँ बिखरे झूठे बर्तन
देखती रहती है
बच्चों की धमाचौकड़ी और
बहुओं के जोरदार ठहाके
उनकी आपसी कलह
देखती रहती है
बेटों का खुलेआम
पीना-पिलाना और
उनके निर्लज्ज क्रियाकलाप
किसी से कुछ नहीं कहती माँ
पिता की मृत्यु के बाद
बस देखती रहती है
आकाश में बिम्बित
शून्य की ओर

डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ
अलीगढ़, उत्तर प्रदेश
ईमेल: amitabhved1947@gmail.com

देवता

छैनी और हथौड़ी की चोट से
जिसका पोर पोर दुखता है
वही पत्थर मंदिर में
देवता बन पुजता है

इतनी महत साधना के बाद
देवता बनने का अर्थ है
खुद को आडम्बरों में बंद कर लेना
चाहे अनचाहे दूसरे के पापों को सहेजना
वरदान के सब्र में खुद के टुकड़े-टुकड़े करते जाना

शुरू में बहुत अच्छा लगता है
आरती शंखध्वनि का साहचर्य
स्तुति और मंतरोच्चार
नैवेद्य का भव्य समर्पण
समवेत जय जयकार
लेकिन शीघ्र ही मुरझाए हुए फूल,
राख हुई अगरबत्ती
चुप और बेजान प्राचीरों के बीच
निरर्थकता का एहसास सर उठाता है
अच्छी तरह समझ में आ जाता है

देवत्व एक ऐसा मुखौटा है
जिसे पहनना सुहाता है
लेकिन जिसे उतार फेंकना
अपने वश में नहीं रह जाता

देवत्व की अंतिम परिणति है
यह हिसाब करते रहना
कि श्रद्धा और वरदान के व्यापार में
किसने किसको कितना छला था
और आखिर में इस नतीजे पर पहुंचना
कि ऐसे देवता से तो वह पत्थर ही भला था

डॉ. रमा सिंह
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. 9810636121

ग़ज़ल

राज भी आज कितने अजाने लगे
उनकी फाइल में कुछ खत मिले अधजले

जिसको जाना नहीं जिसको माना नहीं
क्यूं थे मेरे कदम फिर उधर बढ़ चले

इन चिताओं से ड़र हमको लगता नहीं
जन्म जन्मों से घर में इसी के पले

अपने साये पे इतना भरोसा न कर
रहबरों के ही हाथों लुटे काफिले

उम्र भर जो जला रोशनी के लिए
क्यूं अंधेरा मिला उस दिए के तले

कैसी उलटी पवन चले

कैसी उलटी पवन चले
काँटे बन कर फूल खिले
अब हम क्या बतलाएँ तुमको
होम किया और हाथ जले।

अनगिन गलियाँ हैं जग की
जिनमें तू खो जाएगा
कबिरा का इक तारा फिर
ये ही गीत सुनाएगा
विश्वासों के घर में प्राणी
अपना कह कर गए छले।

हमको केवल दर्द मिला
दुनिया से सौगातों में
उजियारा की कैद हुआ
काली-काली रातों में
सुबह सुहानी ऐसी लगती
जैसे कोई शाम ढले।

जिसने जीवन दिया वही अब
विष का प्याला लिए खड़ी
हर धड़कन के पाँवों में
किसी दर्द का शूल गड़ा
जिनको हमने सागर समझा
वो निकले छिछले-छिछले।

योगेन्द्र कुमार
ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश
ईमेल : ykumar55@hotmail.com

विद्रूप आक्रोश

चहुँ-ओर विस्मय से देखता हूँ
उपवनों को लीलते क्रूर वन
उनमें वृक्षों के अनगिनत ठूँठ
ठूँठों पर बैठे हुए बदनीयती के गिद्ध
अपने अहंकारी तिलिस्म से
विचारों की लाठियाँ भाँजते हुए,
प्रस्थापित करने को आतुर,
अपने अहं के स्वार्थी तथ्य,
निरपराध कंधों की बैसाखी पर !
केवल अविश्वास का मेला ही मेला,
अनजानी इच्छाओं का झुंड ही झुंड,
सर्वत्र अनमना सा पसरा हुआ,
पसीने से सिंचित विक्षुब्ध नग्न मन,
सत्य को ढाँकने को आतुर,
विषाक्त उद्देश्यों की कालिमामयी छाया,
कुछ सुलगती हुई चिंगारियों को,
बुद्धि-चातुर्य से हवा देने को उद्यत,
नैपथ्य से झाँकती काली आँधी सी काया !

समय जूझ रहा अनगिनत झंझावातों से,
शहर लड़ रहा विद्रूप वेदना की चापों से,
चहुँ-ओर व्याप्त अस्तित्व का संघर्ष,
मानवता देख रही अवसादों का उत्कर्ष !
फिर भी सहकार की जगह प्रतिकार,
सहयोग की जगह प्रतिशोध,
शान्ति की जगह नकारात्मक आक्रोश,
स्वीकार्यता की जगह बिखराव का जयघोष !
न जाने कब अशांति की धूप हटेगी,
कब निरर्थक विवादों की आँधी रुकेगी,
कब वैमनस्य के धुँधलके मिटेंगे,
कब अंधी स्वार्थपरता के बादल छटेंगे ?
फिर भी उद्विग्न मन को है विश्वास,
क्षितिज पार देखता वो देदीप्यमान प्रकाश,
पालता सलज्ज अरुणिमा की आस,
जो निराश संसृति को देगी उद्भास !

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि'
मथुरा, उत्तर प्रदेश
मो. : 9870631805
ईमेल : drdinesh57@gmail.com

निर्जीव दीवारें

क्या होता है
जब, मर जाती हैं संवेदनाएँ दुनिया से।
भूल जाते हैं हम
किसी बच्चे का,
बुजुर्ग का,
या फिर किसी बीमार का
अभी-अभी सोना, बराबर के कमरे में।

और बतियाने लगते हैं
मदहोश हुए से, चीख-चीखकर अपने मोबाइल पर
रात के नीरव अंधेरे में
समय का ख्याल किए बिना।

बीच की दीवार का एक सिरा
सोखने की कोशिश करता है
अपने अन्दर समस्त ध्वनि तरंगों को
और अपनी संवेदना की पराकाष्ठा तक
प्रयासों के बावजूद, असफल रहने पर
कोसने लगता है अपने भाग्य को।

वहीं बीच की दीवार का दूसरा सिरा
हो जाना चाहता है स्टील का
या और भी किसी ध्वनि-रोधक चीज का
जो आविष्कृत हुई हो
ध्वनि तरंगों को आर-पार जाने से रोकने के लिए
ताकि अभी-अभी दुलारकर सुलाया हुआ बच्चा
या अस्सी वर्षीय घर का मुखिया
या कई दिन से बीमार चल रही बुजुर्ग मालकिन
सो सके, चैन की नींद
बराबर की शोरगुलनुमा बातचीत से बेखबर होकर
निश्चिंत।
क्या निर्जीव दीवारें
जीवितों से अधिक संवेदनशील हो गई हैं?

प्रगीत कुँवर

सिड़नी - आस्ट्रेलिया

ईमेल : prageetk@yahoo.com

ग़ज़ल (1)

मैं बाहर से भले टूटा नहीं था
मेरे भीतर कोई ज़िंदा नहीं था

मेरी परछाई थी शीशा नहीं था
ये मेरी आँख का धोखा नहीं था

ना उड़ पाया मैं शायद थक गया था
किसी ने जाल तो फेंका नहीं था

रखी थी पेट में जब आग मेरे
तो मेरी जेब में पैसा नहीं था

मैं क्या करता नदी के पास जाकर
मैं भूखा था अभी प्यासा नहीं था

ग़ज़ल (2)

उधर जाकर इधर आने का कोई रास्ता होता
तो जाकर फिर उधर कोई ना ऐसे लापता होता

हम अपने दिल को ही ग़र फूल से पत्थर बना पाते
तो हमको भी बड़ा आसान लेना फैसला होता

कोई आँधी भी आकर फिर हमारा कुछ ना कर पाती
अगर वो भी झुके होते अगर मैं भी झुका होता

अगर ये ज़िंदगी हमको ज़रा सी छाँव दे देती
हमारा मौत की इस धूप में ना तन जला होता

ना वो हमसे ना हम उनसे बिछड़ पाते कभी ऐसे
अगर सब पर ही आया साथ में ये ज़लज़ला होता

मृत्युंजय साधक
गोविंदपुरम, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. : 9891375604

ग़ज़ल

गुण-कसौटी पर कसा जो, वो ख़रा रह जाएगा
इस धरा का इस धरा पर, सब धरा रह जाएगा

हौसला भरके जिया जो, बस असल वो जी लिया
डर गया हो मौत से जो, वो मरा रह जाएगा

ताज़गी फूलों-सी ले के, लब पे अपने ला हँसी
जो हुआ हो फूल बासी, वो झरा रह जाएगा

सूखती शाखें हटाएँ, नर्म कोंपल खिल सकें
पेड़ ग़र छँटता रहा तो, वो हरा रह जाएगा

छोड़ नफरत की ये बातें, 'साधकों-सी' बात कर
भाव दिल में प्यार का ही, बस भरा रह जाएगा

डॉ. अंजु सुमन साधक
गोविंदपुरम, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. : 8368886089, 9891375604

घन बरसा तो.....

घन बरसा तो मन की शाख हरी होगी
तन की माटी सोंधी गंध भरी होगी

जीवन में मधुमास नया आ जाएगा
वन भी उपवन के जैसा भा जाएगा
छाएगा मन के नभ पर फिर से बादल
चारों ओर बिछी इक हरी दरी होगी
घन बरसा तो मन की शाख हरी होगी

झोंकों से तन मन का तरु हिल जाएगा
संवेदन का फूल नया खिल जाएगा
जाने कितनी कोंपल भी फूटेंगीं फिर
केवल सूखी पत्ती एक झरी होगी
घन बरसा तो मन की शाख हरी होगी

अपने से पहले दूजे का ध्यान करें
दूजे का ख़ुद से ज़्यादा सम्मान करें
विश्वासों की प्यारी एक कसौटी पर
सच्चे सोने जैसी प्रीति खरी होगी
घन बरसा तो मन की शाख हरी होगी
तन की माटी सोंधी गंध भरी होगी

दोहे

प्यासे पंछी मारते, रहते अनगिन चोंच।
पानी पर पड़ती नहीं, फिर भी एक खरोंच।।

बीन बजाना हो गया, अब सर्पों का काज।
और सपेरे भूमि पर, रेंग रहे हैं आज।।

व्यापारिकता दे रही, हर पल गहरी चोट।
हम मंदी के दौर में, कटे - फटे - से नोट।।

कलियुग के इस दौर में, क़लम बनी हथियार।
ख़बरें घटना - पूर्व ही, छपने को तैयार।।

यही सत्य था कल सुमन, यही सत्य है आज।
द्वापर युग से आज तक, है अंधों का राज।।

मधु वार्ष्णेय.
बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश
ईमेल: madhuvarshney89@gmail.com
मो. 9410615755

वसंत.....

बीता पतझड़ का पीलापन,
और सूखे पत्तों की शहनाई,
सोहर चैती मिलकर गूंजी
और कोंपल की अरुणाई,

मधु माधव ने मिल,मही पर
मोहक श्रृंगार गढ़े,
मधुक वृक्ष की मदिर गंध
भ्रमर अलबेले नृत्य किए,

मद चूर हुई कोकिल काली
पंचम स्वर में कूकी,
पीत पात झरे शाखों से
कुछ डार हरित, कुछ सूखी,

नव रंग लिए, हर दिशा सजी
हर कली मधुर मकरंद भरी,
नव छंदों से नव रंग खिले,
नव पल्लव से हर वृक्ष फले,

लगा महावर,धरणी इठलाई
हर कली शाख पे, कुछ बौराई,
दिनकर तप्त प्रचंड प्रबल
मही व्यथित अधीर विकल,

रक्तिम पलाश गुल गुच्छ सकल
मोहक दाहक हर शाख सबल,
पुष्प गुच्छ आच्छादित, धरिणी धवल
आम्र बौर, मद किंशुक, गंध विह्वल,

सज्जित अचला, अनंग मन पीतवर्णी,
अति सरसाया,
मन आकुल, व्याकुल,चातक सम सजनी,
अति घबराया,

देख सखी वसंत आया!!!!!!!

अलका शर्मा

नोएडा, उत्तर प्रदेश
मो. : 8755722357
ईमेल: poetess.alka.sharma@gmail.com

गीत

दूर होगी तेरे दिल की सारी तपन, देख मन तू सपन
कर ले खुशियों का, प्यार से आचमन, देख मन तू सपन ।
बन जा चातक तू इस प्रेम की वृष्टि का
प्यार अनमोल वरदान है सृष्टि का
तू भी झर बन के निर्झर सदा प्यार का
दूर कर दे जो इस जग की सारी थकन
देख मन तू सपन,देख मन तू सपन ।।

स्वप्न देखे न होते जो तूने कहीं
सभ्यता थिर ये रहती खड़ी फिर वहीं
तुझको सपनों ने दी है, ये दुनिया नई
तेरे आँगन पड़े हैं, प्रगति के चरण
देख मन तू सपन, देख मन तू सपन ।।

कर परिश्रम अथक डर न तू हार से
बचके रहना है मन के अहंकार से
दूर जो तू कुटिलताओं से भी रहा
तेरे कदमों में दुनिया करेगी नमन
देख मन तू सपन,देख मन तू सपन ।।

इन्द्रधनुषी लगे स्वप्न का हर शहर
लेता आनंद इसमें गया जो ठहर
हर घड़ी तुझको अहसास होगा यही
है धरा तू ही और तू ही तो है गगन
देख मन तू सपन, देख मन तू सपन ।।

ग़ज़ल

हमको अश्क़ों की महफिल में, हँसने वाले बहुत मिले
थे लिबास तो उजले उनमें, मन के काले बहुत मिले

एक ओर हैं भूखे बच्चे, दूजी ओर होटलों में
बहते हुए निरंतर जूठन के परनाले बहुत मिले

कह तो दिया उन्होंने कि अब, हमने पीना छोड़ दिया
मयख़ाने जाकर जब देखा तो, हमप्याले बहुत मिले

सीख लिया था हमने जीना, ग़म के काले साए में
जब से ख़ुद से हाथ मिलाया, हमें उजाले बहुत मिले

परम पिता ने हम सबको, इंसान बनाकर भेजा है
चली परखने जब 'अलका' तो,लोग निराले बहुत मिले

सुधा गोयल
बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश
ईमेल: sudhagoyal0404@gmail.com
मो. : 9917869962

अनाम रिश्ता

कुछ रिश्ते ऐसे होते हैं
जिनका कोई नाम नहीं होता
मिलना तो मन का होता है
तन से संबंध नहीं होता

सॉसों का जीवन से रिश्ता
नैनों का दर्पण से रिश्ता
होठों का चुम्बन से रिश्ता
चन्दन का खुशबू से रिश्ता
इनका कोई नाम नहीं होता
कुछ रिश्ते ऐसे होते हैं
जिनका कोई नाम नहीं होता

कागज का स्याही से नाता
पायल का रुनझुन से नाता
यौवन का आयु से नाता
दिल का हर धड़कन से नाता
कुछ रिश्ते ऐसे होते हैं
जिनका प्रतिदान नहीं होता
कुछ रिश्ते ऐसे होते हैं
जिनका कोई नाम नहीं होता

सावन की ठंडी फुहारों का
वासन्ती स्नेहिल मलयज का
तूफानों में मौजों का
लहरों से निर्मम साहिल का
कोई नाम नहीं होता
कुछ रिश्ते ऐसे होते हैं
जिनका कोई नाम नहीं होता
तन का संबंध नहीं होता

रवि का शशि का इस धरती से
जगमग तारों का अम्बर से
यात्रा करते यात्री से
मंजिल पर चढ़ते राही से
रिश्तों का प्यार नहीं होता
जिनका कोई अंजाम नहीं होता
कुछ रिश्ते ऐसे होते हैं
जिनका कोई नाम नहीं होता

प्रेम कुमार शर्मा.,
खुर्जा, बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश
मो. : 9761130239

नव सवेरा

समय की
ठोकरें
हमने भी
खायी हैं।

असफलता के
काँटे,
हमें भी
चुभे हैं।

फिर भी,
सफल होने की
आशा,
हमने नहीं छोड़ी।

तिमिर
कितना भी
घिर
आया,

फिर भी
वो हमें
ना डिगा पाया।

घने तिमिर में
बढ़ते रहे।
अपने कर्म पथ पर
चलते रहे,

उसी तिमिर से
एक आशा की
किरण निकली

वही बढ़ती हुई
हमारे जीवन का
नव सवेरा बन आयी।

ऋषभ शुक्ला
पुवायां, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश
ईमेल : rishabhshukla952@gmail.com

विस्तार देना चाहता हूँ...

प्रेम जो नित आँसुओं की धार में बहने लगा है।
अनकही पीड़ाओं के संसार में रहने लगा है।
तोड़कर बन्धन नया आकार देना चाहता हूँ-
संकुचित से प्रेम को विस्तार देना चाहता हूँ।

जो निकलकर सींखचों से नाप ले सारे गगन को।
अस्तबल से भर कुलांचे छोड़ दे पीछे पवन को।
मैं परों, टापों को ऐसी धार देना चाहता हूँ-
संकुचित से प्रेम को विस्तार देना चाहता हूँ।

आँसुओं में बह गए काजल को आँखों में सजाकर।
सूने हाथों पर मिलन की मेहंदी फिर से रचाकर।
टूटती चूड़ी को अब श्रृंगार देना चाहता हूँ-
संकुचित से प्रेम को विस्तार देना चाहता हूँ।

भेंट में देकर अंधेरा पथ सृजन करना सिखाया।
और झंझावातों से एकल मुझे लड़ना सिखाया।
उन सभी को कोटिशः आभार देना चाहता हूँ-
संकुचित से प्रेम को विस्तार देना चाहता हूँ।

डॉ चन्द्रकान्ता सिंघल
चन्दौसी, उत्तर प्रदेश
मो. : 9410415901

नयनों में सपने

मौन नयनों में बसते सौ-सौ से सपने हैं,
नयनों के उन सपनों में होते तो अपने हैं।
मौन होठों में भी बसते सौ-सौ नगमें हैं,
उन नगमों में भी तो होते ही सब अपने हैं।।

जब चुपचाप मन में कोई नगमा निखरता है,
टूटा सपना नयनों से नई व्याख्या करता है।
धूपछाँव-सी जिन्दगी के किसी पन्ने को पढ़कर,
इन नयन-गगरियों से पानी-सा झलक उठता है।।

जब अपने दर्द देते, होंठ सिल से जाते हैं,
होंठ सिलते हैं, पर दिल में टीस दे जाते हैं।
अपने बिखरे हुए इस मन की किससे कहूँ व्यथा?
व्यथा से नये-नये प्रश्न अंकुरित हो जाते हैं।।

ओ नयना, चुप ही रहना, मन खिन्न हो जायेगा,
देखना! दिल की पीड़ा से काव्य रच जायेगा।
इस दिल में देख लो झांक के, लिखा तो बहुत है,
नयनों के रोने से सब धुल के बह जायेगा।।

शिशिर शुक्ला
शाहजहांपुर, उत्तर प्रदेश
मो. : 7388896262
ईमेल : nishuphysics@gmail.com

"तुमने कितना कुछ खोया है..."

रख हृदय पे पत्थर,
तुमने समर्पित देश को अपना लाल किया,
छोड़ सुनहरे सपनों को,
तुमने अनंत उपवास लिया।
कर्ज चुकाकर, मांग विदा,
चिर निद्रा में सुत सोया है,
भारत की रक्षा की खातिर,
तुमने कितना कुछ खोया है ।
हमें सुलाने को सैनिक
प्रतिदिन कांटों पर सोते हैं,
सबकी चहल पहल को,
उनके घर सन्नाटे होते हैं।
धन्य पिता जो हंसते
हंसते छिपा के आंसू रोया है,
भारत की रक्षा की खातिर,
तुमने कितना कुछ खोया है ।
घर की फुलवारी में जब
कोई फूल प्रकट अब होता है,
सूना आंगन घर का
तब तब चुपके चुपके रोता है।
काश लौट आये
जो सारा बचपन गोद में सोया है,
भारत की रक्षा की खातिर,
तुमने कितना कुछ खोया है।
तकती राहें, करें प्रतीक्षा,
पर आंखों को समझाना है,
बहुत दूर अब गया है बेटा,
वापस लौट न आना है ।
कर नमन तुम्हे और शीश झुका,
देखो भगवान भी रोया है,
भारत की रक्षा की खातिर,
तुमने कितना कुछ खोया है।
कभी कभी जब गाँव तलक
सरहद की हवाएं आती हैं,
दरवाजे पर जलते दिये की
चमक बढ़ाकर जाती हैं।
मत रोना, मैं फिर आऊंगा,
ये संदेश सँजोया है,
भारत की रक्षा की खातिर,
तुमने कितना कुछ खोया है।

भानु त्रिवेदी
पुवायाँ, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश
मो. : 7379541007

सूर्य

मैं सहारा पाऊँगा
मीलों फैले इस सागर
की गोद में थककर
कहीं सो जाऊँगा

या लूंगा कहीं ओट
किसी ऊंचे पहाड़ की
और वहीं खो जाऊँगा
या कहीं दूर क्षितिज पर
बांस के झुरमुट में ही
ओझल हो जाऊँगा

पर एक अल्प विराम
मैं पुनः लौटूंगा किसी
पर्वत के पीछे से
बहती जलधारा
के नीचे से

अपनी स्वर्णिम आभा की
नूतन रश्मियों के साथ
नूतन दिवस, नूतन वर्ष
के नव प्रकाश के साथ करने
स्वागत नूतन का

डॉ. ब्रजराज ब्रजेश
गुलावठी, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश
मो. : 9690077683

आशीष की चादर

चाहिए
छोटा सा घर
जिसमें रख सकूं
महफूज खुद को
शूल सी चुभती
राहों की निगाहों से

और चाहिए
एक गुल्लक
जिसमें छुपा कर रखा जा सके
किसी का नेह, बरसात का मेह
ख्वाबों के अमलतास
मखमली अहसास

चाहिए
एक आकाश
घनी आकांक्षाओं के लिए
जिसमें पली बढ़ी
कुछ वृत्तियों के लिए
कम पड़ गई है जमीन

ताकि आशीष की चादर ओढ़
बेफिक्र सोया जा सके
और फिर
आता रहे हर रोज
नीयत-बदनीयत
कोई दबे पांव....

नरेश चन्द
बी.बी. नगर, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश
मो. : 9720247284
ईमेल : nareshchand1541979@gmail.com

दास्तां

मेरी कविता दर्दों की है दास्ताँ।
गरीब झोपड़ियों की है दास्ताँ।

भूखे पेट जिन्हें रोटी मिलती नहीं,
उनसे निकली कराहों की है दास्ताँ।

जिनके तन से कपड़ा छीन लिया,
उनके तन के सिकुडन की है दास्ताँ।

जिनकी लाज पे है सबकी टेढी नजर,
उनकी नजरों पे वार की है दास्ताँ।

जिनका चूसा है खून सभी ने यहाँ,
उनके बचे हुए पिंजर की है दास्ताँ।

आओ मिलकर सभी उनसे प्रेम करें,
तुमको अपने खुदा का है वास्ता।

डॉ. शोभा रतूड़ी
मेरठ, उत्तर प्रदेश
मो. : 7017994668

वसंत

पात-पात मुस्कुराता वसंत
डाल-डाल गीत गाता वसंत।

प्रीत वर्ण सरसों की मुस्कान
स्वर्णिम आभा ले होता विहान
खग-विहग से स्वर मिला
पंचम सुर में चहकता हुआ
माघ रश्मियों से झांकता वसंत
मदिर-मदिर मोहक वसंत।

नव अरुण की लालिमा सुहानी
नव रंग लेकर आती भोर
कोमल पल्लव का झरोखा खोल
चहकती कलियां चहुं ओर
प्रसून-प्रसून चहका वसंत
पवन-पवन महका वसंत।

हर उपवन मदभरे नैन लिए
रूप रंग में खिलता वसंत।।

विनय कुमार दुबे
बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश
मो. : 9412503512
ईमेल : dubeyvinay2009@gmail.com

हमेशा खड़े रहे

लड़के हमेशा खड़े रहे
खड़ा रहना उनकी कोई मजबूरी नहीं रही
बस उन्हें कहा गया हर बार
चलो तुम तो लड़के हो, खड़े हो जाओ
तुम मलंगों का कुछ नहीं बिगड़ने वाला
छोटी-छोटी बातों पर ये खड़े रहे कक्षा के बाहर

स्कूल विदाई पर जब ली गई ग्रुप फोटो
लड़कियाँ हमेशा आगे बैठी
और लड़के बगल में हाथ दिए पीछे खड़े रहे
वे तस्वीरों में आज तक खड़ें हैं

कॉलेज के बाहर खड़े होकर
करते रहे किसी लड़की का इंतजार
या किसी घर के बाहर घंटों खड़े रहे
एक झलक एक हाँ के लिए
अपने आपको आधा छोड़
वे आज भी वहीं रह गए हैं।

बहन-बेटी की शादी में खड़े रहे मंडप के बाहर
बारात का स्वागत करने के लिए
खड़े रहे रात भर हलवाई के पास
कभी भाजी में कोई कमी ना रहे
खड़े रहे खाने की स्टाल के साथ
कोई स्वाद कहीं खत्म न हो जाए
खड़े रहे विदाई तक दरवाजे के सहारे
और टैंट के अंतिम पाइप के उखड़ जाने तक
बेटियाँ-बहनें जब लौटेंगी
वे खड़े ही मिलेंगे।

वे खड़े रहे पत्नी को सीट पर बैठाकर
बस या ट्रेन की खिड़की थाम कर
वे खड़े रहे बहन के साथ घर के काम में
कोई भारी सामान थामकर
वे खड़े रहे माँ के ऑपरेशन के समय
ओ. टी. के बाहर घंटों
वे खड़े रहे पिता की मौत पर अंतिम लकड़ी के
जल जाने तक
वे खड़े रहे दिसंबर में भी
अस्थियाँ बहाते हुए गंगा के बर्फ से पानी में

लड़को, रीढ़ तो तुम्हारी पीठ में भी है
क्या यह अकड़ती नहीं?

डॉ. दुर्जन प्रसाद 'दिनेश'
लोनी, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
ईमेल : dpsharma75@gmail.com
मो. : 7351732244

कल्पना के रंग

कल्पना के रंग सजाऊं नए-नए मैं रोज
मानव हित में ध्यान लगाऊं
नया रूप में अपना पाऊं
कभी मैं डॉक्टर बन जाऊं
पहन के स्टेथोस्कोप घनौ इतराऊँ
बिना दवा के दर्द करूं मैं दूर
बनूँ हमदर्द सभी का
कष्ट रहे न तन में कोई
ऐसी युक्ति रचाऊं
चीर-फाड़ के बिना सभी के
सारे कष्ट मिटाऊँ
स्वस्थ बना दूँ जीवन सारा
मनाएं तरह-तरह की मौज
कल्पना के रंग सजाऊं नए-नए में रोज

कभी मैं मंत्री बन जाऊं
भाग्य पर अपने इठलाऊं
राशन बिजली फ्री कराऊँ
वोट बैंक मैं खूब बढ़ाऊँ
स्याह को सफेद करूं
भ्रष्टाचार से पेट भरूं
महंगाई पर कब्जा कर लूं
भाषण की देकर डोज
कल्पना के रंग सजाऊं नए-नए मैं रोज

कभी मैं वैज्ञानिक बन जाऊं
दुनिया को खुशहाल बनाऊं
क्षण में कर दूं नष्ट कोरोना
बटन दबाकर लाल
पलक झपकते ही हो जाए
सारी दुनिया खुशहाल
रोबोट बनाऊं जग से न्यारा
काम करे जो पल में सारा
घर बैठे-बैठे ही करूं
नित नई-नई मैं खोज
कल्पना के रंग सजाऊं नए-नए मैं रोज

यह बन जाऊं वह बन जाऊं
कभी-कभी सब कुछ बन जाऊं
दुनिया के रंगों को परखूँ
अपने भी उस में रंग भर दूं
काले रंग को दूर हटा दूं
समरसता के रंग मिला दूँ
खिल उठे ये जग फूलों सा
दे दूं ऐसा सुंदर पोज
कल्पना के रंग सजाऊं नए-नए मैं रोज

डॉ. बिंदु कर्णवाल
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. : 9810646945
ईमेल : binduraj20feb@gmail.com

अपना रुदन मुझे आज भी सुनाई देता है.....

पीछे मुड़कर देखती हूं तो
सुनती हूं अपना ही रुदन
थी तो मैं भी एक तितली रंग बिरंगी
और चाहती थी कि मंडराऊं सुनहरे पुष्प पर

और उड़ जाऊं गगन के छोर तक
समझी तो पाया और भी थे....
हर ओर में था छोर में था एक भयंकर
जोर का संघर्ष जैसा
विघटन था या था यह जीवन
चाहने, करने और होने में था विरहा बहुत

पाने व कर पाने का था द्वंद हर दम
चाहते तो हम सभी थे
बांटना भी व रहना खुश
लेकिन हर एक अपनी ही खुशी को
छीन लेना चाहता था दूसरे से
यह चक्र ही चलता है जब से जाना है मैंने
पीछे मुड़कर देखती हूं तो सुनती हूं अपना ही रुदन...

डॉ. रानी कमलेश अग्रवाल
हापुड़, उत्तर प्रदेश

प्यारी बेटियाँ

चिड़ियाँ, महकते फूल-सी लगती हैं बेटियाँ
प्यारी बहुत ही प्यार में लगती है बेटियाँ
आँगन में दिल के झाँक के देखें तो एक बार
आँखों की प्यारी पुतली-सी लगती हैं बेटियाँ

सातों स्वरों में कूकती कोयल-सी बेटियाँ
सातो रंगों को हैं लिए किरणों-सी बेटियाँ
गुड़िया किसी की प्यारी तो गुड्डा है किसी का
सखियों के संग ब्याह रचाती है बेटियाँ

माँ के लिए हैं स्वप्न का श्रृंगार बेटियाँ
बाबुल के लिए जान से प्यारी हैं बेटियाँ
हँसने से इनके हँसती हैं दीवारें घरों की
भइया के सूने हाथ की राखी हैं बेटियाँ

घर को धरा का स्वर्ग बनाती हैं बेटियाँ
खुद को जला के तम को भगाती हैं बेटियाँ
इज्जत इन्हीं के हाथ में रहती है सभी की
दोनों जहाँ की लाज बचाती हैं बेटियाँ

पूजा के जलते दीप की बाती हैं बेटियाँ
ममता दिखा के सबको रिझाती हैं बेटियाँ
रुकते नहीं है पाँव पल भी भी जमीं पर
मेहनत की सौधी गंध लुटाती हैं बेटियाँ

गर्मी में ठण्डी छाँव-सी लगती हैं बेटियाँ
सर्दी में मीड़ी धूप-सी लगती हैं बेटियाँ
वर्षा खुशी की करके हँसाती हैं सभी को
अनगिन बहारें द्वार पर लाती हैं बेटियाँ

अविरल बहें वह धार हैं गंगा-सी बेटियाँ
दुनिया जहाँ की आग भी सहती हैं बेटियाँ
पीकर गमों के विष उु तक नहीं करें
अमृत सभी को दान में देती हैं बेटियाँ

हिरनी कभी बनी, कभी तुलसी हैं बेटियाँ
चंचल कदम को बाँच लें रस्सी हैं बेटियाँ
मीरा कभी बनीं, कभी दुर्गा भी बन गयीं
दुश्मन के लिए बन गयीं ये काल बेटियाँ

डॉ. राकेश अग्रवाल
हापुड़, उत्तर प्रदेश

कुदरत का अहसान है बेटी

मेरी पहचान है बेटी, मेरा अरमान है बेटी
मेरी साँसें मेरी धड़कन मेरी तो जान है बेटी
भरा कुदरत ने बेटी को लबाजलब प्रेम ममता से
मनुज पर नेक कुरदत का बड़ा अहसान है बेटी

मेरी गुड़िया मेरी चिड़िया मेरी प्यारी-सी वो तितली
मेरी मैना मेरी नैना मेरी आँखें की है पुतली
मेरे आँगन की दीवारें भी उससे बात करती हैं
मेरे घर की पुरानी चौखटों की आन है बेटी

मेरी बेटी के आने से बहारें घर में मुस्कायीं
सुगन्धित हो गए रिश्ते सभी ने खुशियाँ हैं पायीं
मधुर व्यवहार से पगली सभी को जीत लेती है
किसी सत्कर्म से, मेरे मिला वरदान है बेटी

मेरी निंदिया मेरी लोरी मेरी श्यामा मेरी गीता
मेरी राधा मेरी गौरी मेरी गंगा मेरी सीता
मेरी यादों मेरी बातों में उसके बोल बसते हैं
मेरी आँखों से गिरते आँसुओं की बान है बेटी

कभी बाती दिये की बन अँधेरे दूर करती है
कभी ग़म से थके चेहरों में अपना नूर भरती है
मेरे सपनों की बगिया में बहारें उससे आती हैं
मेरे गमले में खिलते फूल की मुस्कान है बेटी

मेरी वो लाड़ली मुझको बहुत ही लाड़ करती है
कभी बालों में कोमल उंगलियों से प्यार भरती है
मेरे हृदय मरुस्थल में घटा बनकर बरसती वो
कन्हैया की सुरीली बाँसुरी की तान है बेटी

डॉ. देवकीनन्दन शर्मा
गुलावठी, बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश
मो. : 9837573250
ईमेल: dev_hindi@yahoo.com

बिरज में होरी

नई मजरियों से महमहाती अमराइयाँ, महकते फूलों से लदी शाखाएं, मदिर-मादक गंध बिखराती मलमली फागुनी बयार, ढोल-...-मंजीर-मृदंग पर झूमते-थिरकते गली-चौबारे, रसीले रसियों से सरावोर घर-आँगन...

चौंकिए मत साहब! यह है अबीर गुलाल भरी झोली, अनुरागभरी मीठी ठिठोली – रंगीली होली। निगोड़ी होली क्या आती है, चहकने लगती हैं मीठी-मीठी आकांक्षाएं, लहकने लगती हैं उद्दाम उमंगें और बहकने लगती हैं सुरंग हिलोरें। ढेर लग जाते हैं अबीर-गुलाल के, खुल जाते हैं बोरे टेसुओं के, बिकने लगती है पिचकारियाँ, बननी शुरू हो जाती हैं गोबर की ढालें-गुलरियाँ और महक उठती हैं गुझिया-पापड़-सैलडू और नमकीन की सुगन्ध से गलियाँ। हाथ तो करते हैं काम और कंठ में उमड़ता है राग- 'होली खेलें नंद के लाल खड़े बरसाने में।'

यूँ होली का त्यौहार समूचे देश में ही मनाया जाता है हर्षोल्लास से, पर ब्रज की 'होरी' की बात ही है कुछ और। अगर आप में है दम, तो चलिये हमारे संग, ले चलते हैं हम।

ब्रज की रंगीली 'होरी', रसिया कुंवर कन्हाई की लीलाभूमि की लुभावनी 'होरी' – होड़ नहीं कोई। पूरे सत्तर दिन ब्रज-मण्डल में खेली जाती है होरी। वसंत-पंचमी को ही गाड़ दिया जाता है 'दांडा', तब से ही शुरू हो जाती है गीत-संगीत, रंग-अबीर-गुलाल की ठिठोलियाँ और चलती रहती हैं चैत्र - पूर्णिमा तक अनूठी अठखेलियाँ। हफ्तों पहले महिलायें बटने लगती हैं कोड़े, पिलाने लगती हैं डंडों को तेल और पुरूष सम्भालने लगते हैं ढाल, बीनने, भिगोने और भूंजने लगते हैं भांग। रात - रात भर चलता है चौपाइयों का अभ्यास, जैसे - जैसे आती जाती है धुलहंडी पास, वैसे-वैसे फगुनाई से बौरा उठता है हास-परिहास। नंदगाँव, बरसाना,

मथुरा, वृंदावन, गोकुल, दाऊजी, द्वारिकाधीश आदि सभी हो उठते हैं इन्द्रधनुषी। कहीं, मस्ती में झूमती हैं रंग-बिरंगी टोपी-पाग-कमीज-कुर्ता-धोती पहने रसियों की नृत्य-टोलियाँ-'रसिया, मस्त महीना फागुन कौ रे।' तो कहीं, मोहित करते हैं नृत्यों के घुमेर और झांझ-ढोलक के शरबती बोल- 'मोरे विरज में रसिया बहुत हैं, तू कितसूं यहाँ आयो रे?'

धार-धार छूटती है पिचकारियाँ, बरसाती हैं सतरंगी-रस-धाराएं, उछलती हैं गुलाल की मूठें, उड़ते हैं लाल पीले-हरे अबीरी गुब्बारे। ऐसे में रंग-अबीर-गुलाल की जो पड़ती है चोट, उसे तो कर लिया जाता है सहन, क्योंकि वह धुल जाती है, मिट जाती है: किन्तु मतवारे नयनों की कैसे सही जा सकती है चोट; तभी तो बेचारी ब्रज-गोपिकाओं को करनी पड़ जाती है घूंघट की ओट-

'मत मारो दृगन की चोट रसिया,
होरी में मेरे लग जायेगी।'

श्रीद्वारिकाधीश मंदिर की होली का अपना ही होता है अनोखा रंग, रिक्शों-इक्कों – तांगों में रंग-गुलाल से सराबोर असंख्य नर-नारी द्वारिकाधीश पहुँचते हैं मन में भरे उमंग – 'खेलेंगे आज किसनु सूं होरी।' मंदिर के मुख्य दर्शनालय में शोभित होता है कृष्ण-कन्हैया का अनुपम हिंडोलना। कहीं नृत्य, कहीं कीर्तन, बड़ा ही सुरंगी वातावरण। आते हैं भक्त, होते हैं पाप मुक्त; द्वारिकाधीश महाराज से होली खेलना जन्म-जन्म के धोना है पाप, जीवन को करना है सफल।

दाऊजी की होली 'हुरंगा' के नाम से है विख्यात। होली के उपरान्त चैत्र कृष्ण द्वितीया को दाऊजी के प्रांगण में हुरिहार पिचकारियों-बाल्टियों से हुरिहारनों पर डालते हैं रंग, मनमें उठती हैं तरंग-मचलती है उमंग और देखते ही हुरिहार नें हुरिहारों की कमीज-बनियान डालती हैं फाड़, उन्हें भिगोकर रंग में, बनाकर गीले कोड़े कसकर मारती हैं हुरिहारों के नंगे बदन पर। हुरिहार डालते जाते हैं रंग, हँसते हुए – पिटते हुए। रंग पर्व की इस अनुपम रसनिधि में डूबते-उतराते हजारों दर्शक हर्ष विभोर होकर पुकार उठते हैं - 'दाऊजी महाराज की जय।'

फाल्गुन शुक्ल नवमी को बरसाने की संकरी गली 'रंगीली गली' गूंज उठती है - 'बोल लाड़िली लाल की जय' के तुमुल उद्घोष से। लंहगा-ओढ़नी, झालर-पल्लू के जम्पर पहने बरसाने की बलिष्ट बदना लाजभरी गोपियाँ घूंघट काढे उछल-उछल कर नंद गांव के गुसाइयों पर बरसाती हैं लाठियाँ, बेचारे गुसाइयों की उड़ने लगती हैं हवाइयाँ, मगर आप इन्हें ऐसा – वैसा ही न समझिए। मजाल है जरा-सा भी बदन को छू जाये लाठी, क्योंकि वे बड़ी चतुराई से रोकते हैं लाठियों के प्रहार को अपनी ढाल पर। बड़ी अद्भुत जादुई है यह होली, राग-अनुराग भरी ठिठोली; जिसमें लाठी की कठिन मार भी लगती है मीठी-मीठी।

ब्रज की होरी के हुड़दंग में मथुरा के रसीले चौबों की नृत्य-मंडलियों की ठिठोलियों के खिलखिलाते ठसकों का भी कोई जवाब नहीं।

कोई गाता है, कोई बजाता है और कोई नाचता है। कोई खूबसूरत से नौजवान चौबे के चेहरे पर रेशमी दुपट्टे का डाल देता है घूँघट और मंडली लगती है झूमपने झटपट-'आओ आओ री नवेली, अलबेली सहेली, गहें श्याम कों।'

कहाँ तक सुनायें? कहाँ तक बतायें? ? कहाँ तक कहकहें लगायें ? ? ? कहाँ तक लिखें - लिखायें ? ? ? ? ब्रज की रसीली-रगीली टोली, अनूठी अठखेली, खट्टी - मीटी - चटपटी ठिठोली, टेसूभरी, गुलालसनी और केबड़े धुली होरी की कोई सीमा नहीं, कोई अंत नहीं। ब्रज का यह उत्सव है, प्रेम के बरसते इन्द्रधनुषी रंगों एवं छलकती हुई विशुद्ध मानवीय राग - चेतना के भव्य वैभव का। यह वसुंधरा का ऐसा महापर्व है, जिसको एक नजर देखने के लिये तरसते हैं नर - नारी। आज भी इस अवसर पर ब्रज में ढप-झांझ और मंजीरे की थाप पर लहकती-थिरकती नृत्य - टोली में जब कोई पुरूष किसी स्त्री का पल्लू पकड़कर या कोई स्त्री किसी पुरूष का हाथ पकड़कर नाचने के लिये खींच लेती है बरबस, तब जो बंधता है समां सरस, उसे 'गूंगे के फल की नाई' केवल कर सकते हैं महसूस। आँखों में 'द्वै-द्वै गोपी बिच-बिच माधव' का दृश्य जाता है तैर, और उसके सम्मुख फिल्मों के तड़कीले-भड़कीले युगल-नृत्य भी लगते हैं फीके। संकीर्ण मानसिकता वाले या फिर हर अपनी वस्तु को पाश्चात्य रंग के चश्में से देखने वाले भले ही इसमें 'अश्लीलता' देखें, मगर साहब, ब्रजवासी गाते हैं, नाचते हैं - सिर्फ अपने आनन्द के लिये। उनके इस आनन्द का आश्रय है न कोई पर पुरूष और न कोई परस्त्री। ब्रज में है एक पुरूष 'नन्दनन्दन रसिया कुंवर कन्हाई' और है एक ही स्त्री 'वृन्दावनवारी बरसाने वारी राधारानी'। इन्हीं को हैं समर्पित ब्रजवासी। ईश्वर बचाए - आज की संकीर्ण, विकृत खोखली आधुनिक सभ्यता से धरती के इस 'आनन्दलोक' को। आइए - ब्रज की चंदनी रज को अपने मस्तक से लगायें, आपसी बैर-भाव मिटाएं, हाथ में ही नहीं, चेहरे पर ही नहीं, मन में भी टेसू घोलें-अबीर - गुलाल मलें। फिर देखिए - बज उठेगी प्रेम की बाँसुरी, जल उठेंगे विश्वास के दीप और मुस्करा उठेगा खुशियों भरा चमन।

डॉ. टी महादेव राव
विशाखापट्टनम, आंध्र प्रदेश
मो. : 9394290204
ईमेल: mahadevraot@gmail.com

जीवन में सम्बन्धों का माधुर्य

जीवन की व्यस्तताएं व्यक्ति को अलग करती हैं, लेकिन वर्तमान में जो स्थिति बन रही है उस पर विचार-मंथन करने की आवश्यकता है। जिंदगी में रिश्ते अहमियत रखते हैं, उनकी अपनी खास जगह होती है। आज से कुछ पहले जब जीवन भौतिकता से यांत्रिकता की ओर जा रहा था, तब भी मिठास कायम थी रिश्तों की। मिल बैठकर एक दूसरे के दुख दर्द में हिस्सेदारी, सुख के पलों में मिल-बांटकर खुशियां मनाना- सब कुछ जीवन में मधुरस घोलते थे। आने वाले कल के लिए नई मिठास भरते थे। रिश्तों से ही तो मानव सामाजिक प्राणी बना है। रिश्तों ने ही उसे जीने का गुर सिखाया है, रिश्तों से जीवन को नए दृष्टिकोण से देखने की प्रतिभा विकसित हुई है।

शीत के दिनों में पिछवाड़े खाट बिछाकर पत्तियों से छन कर आती गुनगुनाती धूप का मिलजुलकर आनंद लेना, शाम होते ही दादी-नानी के कंबल में घुसकर गरमाते हुए कहानी किस्से सुनना, माता-पिता के डांट डपट पर भी खेलते कूदते रहना, छुट्टी होने पर भी स्कूल के मैदान में दोस्तों के संग खेलते रहना, लौटते वक्त मिलकर रास्तों की धूल उड़ाना, पत्थरों को पैरों से उछालना, घर पहुंचते ही साधु जीव बन जाना उन सब के साथ भी हुआ है, जो अब प्रौढ़ हैं और बुजुर्ग होते जा रहे हैं।

घर के बाहर मैदान में बैठ कर गपियाना, त्यौहारों में पकवानों का आदान-प्रदान, मिल बैठकर भाई बहनों के होमवर्क का महासंग्राम, सभी के साथ रसोई के बाहर बैठकर भोजन करना, किसी की तरकारी, किसी की रोटी, किसी की खीर, किसी के पकोड़े गायब हो जाना

- कहां तक गिनायें। उस वक्त की हर करतूत में अजीब सी कशिश रहा करती। जीवन फर्राटे से चली जा रही शताब्दी एक्सप्रेस की रफ्तार लिए हुए था।

आज सारे संबंध केवल औपचारिक रह गए हैं। हर कोई भागदौड़ में व्यस्त है। बच्चे उम्र से पहले बड़े हो गए हैं, वैसे ही जैसे कली को फूल बनने से पहले उसे खींचतान कर फूल बना दिया जाए। भरा पूरा परिवार होने के बावजूद सुबह उठने से रात सोने तक कोई ऐसा नहीं रह जाता जिससे मन की बातें की जा सकें। जीवन को सारी प्रौद्योगिकी अपने हाथों में लेकर दबाए जा रही है। बच्चे मोबाइल पर क्लासेज लेते, कभी कार्टून या फिल्म देखते मिलेंगे। बड़े, अल्दीन के जादुई चिराग के जिन्न की तरह मोबाइल के गुलाम होकर कभी व्हाट्सएप, कभी फेसबुक, कभी फिल्में, कभी सीरियल, कभी बातें करते हमेशा व्यस्त हैं। इस तरह एक ही घर में कई कई घरों का एहसास होता है। आजकल पत्नी अलग मोबाइल में व्यस्त है, तो पति अलग। बच्चे भी खेल-कूद छोड़कर मोबाइल पर गेम्स खेलते नजर आते हैं। अपने -अपने मोबाइल, अपनी-अपनी दुनिया।

घर में मिल बैठकर खाना खाना, एक साथ बैठकर बतियाना, हंसी ठट्ठे सहित दोस्तों की महफिल, त्यौहार में समारोह, सारा कुछ जैसे आकाश कुसुम हो गए हैं। अब ये पुरानी कहानियों की घटनाएं और पात्र बनकर रह गए हैं। यह रिश्तों में लगी सेंध है या भीड़ में भी अकेले होते शख्स की खोती हुई पहचान?

स्वयं को इस मशीनी गुलामी, प्रौद्योगिकी की परतंत्रता, मोबाइल के मोह से बाहर निकालना होगा। खुले आसमान को देखे कितने दिन हो गए? खुली हवा में सांस लेते कितना वक्त गुजर गया? कुदरती खूबसूरती आंखों में भरे कितना समय निकल गया? सोचने की आवश्यकता है कि हम कहां से कहां पहुंच गए हैं। सोचेंगे तभी खुद को बदलेंगे और तभी नीरस जीवन में मधुरस भर सकेंगे, नवरस भर सकेंगे।

व्यस्तता रिश्तों को तहस नहस करने का माद्दा रखती है। आइए, थोड़ा वक्त निकालें, बाहर निकलें, खुली फिंजा में कुछ अपनों से अपने बनकर मिलें, ताकि मानवीय मधुरता का आस्वादन कर सकें। खुद में इंसानियत का रस भर सकें।

डॉ. ईश्वर सिंह
राजेन्द्र नगर, साहिबाबाद, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. : 9899137354
ईमेल : isteotia1162@gmail.com

पिंजरा अविश्वास का

जो जीवन-मूल्य, मानव जीवन को सहज, सुखद और सफल बनाते हैं, उनमें प्रेम, आशा और विश्वास बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनमें से किसी एक के भी अभाव में आप एक अच्छे जीवन की कल्पना नहीं कर सकते। इन तीनों जीवन मूल्यों में भी 'विश्वास' का विशेष महत्व है और वह इसलिए क्योंकि जहां विश्वास है वहीं विश्वासघात भी है। यूं तो जहां प्रेम है, वहाँ भी नफरत है और जहां आशा है वहाँ निराशा भी है, किंतु सामान्य रूप से यदि हम किसी से प्रेम करते हैं तो यह तो संभव है कि वह हमसे प्रेम न करे लेकिन यह लगभग असंभव है कि वह हमारे प्रेम के बदले हमसे नफरत करे। इसी प्रकार आशा के स्थान पर निराशा हो सकती है किंतु वह परिस्थितिजन्य होगी, व्यक्ति जनित नहीं। यदि किसी व्यक्ति के कारण आशा के स्थान पर निराशा मिलती है तो वह भी विश्वास के स्थान पर विश्वासघात की ही परिणिति ही होगी। इन दोनों से हटकर विश्वास के साथ विश्वासघात हमेशा व्यक्ति जनित होता है। हम जिस व्यक्ति पर विश्वास करते हैं, विश्वासघात प्रायः उसी से मिलता है। इस चुनौती और विडंबना के बीच भी जीवन में विश्वास का होना बहुत जरूरी है। होता यह है जब कोई व्यक्ति लगातार विश्वास के बदले विश्वासघात का शिकार होता है तो धीरे-धीरे उसका विश्वास, अविश्वास में बदल जाता है। फिर वह किसी पर भी भरोसा नहीं करता। वह हर किसी को संदेह की दृष्टि से देखता है। यही सन्देह और अविश्वास एक पिंजरा बनकर उस व्यक्ति को अपनी गिरफ्त में ले लेता है। अविश्वास के पिंजरे में कैद व्यक्ति का जीवन हमेशा डर, भय और संशय से घिरा रहता है। वह रिश्तों की मिठास और उपलब्ध सकारात्मकता का आनंद नहीं ले पाता। यदि हम अविश्वास के पिंजरे में कैद होते हैं तो यह हमारे जीवन को किस प्रकार दुष्प्रभावित करता है, इसका अध्ययन, कुछ रिश्तों पर पड़ने वाले इसके दुष्प्रभावों की विवेचना के द्वारा करते हैं:

- यदि आपके आस-पास कोई ऐसा वृद्ध व्यक्ति रहता है जिसके साथ उसका परिवार नहीं रहता और आप यह सोचकर उस व्यक्ति के पास आना-जाना शुरू कर देते हैं कि बुजुर्ग को थोड़ी कंपनी मिलेगी तो उसे अच्छा लगेगा या आप उसकी सहायता करने लगते हैं, उसके लिए जरूरी दवा और जरूरत का दूसरा सामान बाजार से लाकर

देने लगते हैं, तो यह संभव है कि वह बुजुर्ग आपकी इस सदाशयता से असहज महसूस करे और धीरे-धीरे आपसे बचना शुरू कर दे। यदि वह ऐसा करने लगता है, तो आप आसानी से समझ सकते हैं कि वह व्यक्ति अविश्वास के पिंजरे का कैदी है। जिस पिंजरे में वह स्वयं को सुरक्षित समझ रहा है, वास्तव में वह पिंजरा उसे कैद किए हुए है और उसे नुकसान पहुंचा रहा है।

• जो पति अपनी पत्नी की निष्ठा और वफादारी पर विश्वास नहीं करता उसके घर में अशांति और कलह स्थाई रूप से निवास करते हैं। जब भी उसके घर कोई पुरूष-मित्र या रिश्तेदार मिलने आएगा तो वह उसके हर हाव-भाव को एक अलग नजरिए से देखेगा। पत्नी द्वारा प्रदर्शित औपचारिक आतिथ्य के ऐसे अर्थ निकलेगा जो उसके मन में पल रहे अविश्वास के अनुरूप हों। फिर उस अतिथि के चले जाने के बाद वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पत्नी पर 'बहुत अपनापन दिखाया जा रहा था' जैसे कटाक्ष करके अपनी भड़ास निकालेगा। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता, तो मन ही मन कुढता रहता है अथवा कोई काल्पनिक कहानी गढ़ता रहता है। इससे न केवल वह स्वयं दुखी और परेशान रहता है, अपितु अपनी पत्नी को भी निरंतर संदेह की दृष्टि से देखता रहता है। इससे उसके परिवार में कभी भी प्रेम, सौहार्द और विश्वास का माहौल नहीं बन पाता और परिणामस्वरूप यह उसके और उसके परिवार में सबके दुख और तनाव का कारण बनता है। कभी-कभी यह अविश्वास संबंध विच्छेद, आत्महत्या या हत्या की दुखद स्थिति तक भी चला जाता है। अखबारों की खबरें इसकी रोज गवाह बनती हैं।

• जब कोई पत्नी अपने पति पर अविश्वास करती है, तब भी लगभग यही स्थिति होती है। ऐसी पत्नी किसी भी महिला को अपने पति के आसपास देखकर, भले ही वह उसके कार्यालय या कारोबार से जुड़ी हो, अपने मन में बसे अविश्वास के कारण, न केवल घर में कलह को जन्म देती है, अपितु कई बार सार्वजनिक रूप से अपने संदेह को प्रकट कर पति की सामाजिक प्रतिष्ठा को भी नुकसान पहुंचाती है। इसके प्रतिकार में पति उसके साथ दुर्व्यवहार करता है और परिवार का माहौल बेहद तनावपूर्ण और घुटन भरा बन जाता है। कई बार यह माहौल दांपत्य जीवन की समाप्ति, अर्थात तलाक तक पहुंच जाता है। विडंबना यह है जब अविश्वास के चलते किसी दंपत्ति में तलाक होता है, तो पुनर्विवाह के बाद भी यह अविश्वास जीवन में पूर्ववत व्याप्त रहता है, केवल पात्र बदल जाते हैं। प्राय: यह देखा गया है कि पति-पत्नी के बीच इस अविश्वास की कोई ठोस वजह नहीं होती केवल काल्पनिक कहानी और अविश्वास मिलकर उनके दाम्पत्य जीवन को बर्बाद करने की पटकथा लिख देते हैं।

• जब यह अविश्वास भाई-भाई के बीच पनप जाता है, तो वह उन्हें भाई नहीं रहने देता, अपितु एक दूसरे का प्रतिद्वंदी बना देता है। जिन दो भाइयों के बीच अविश्वास होता है, उनमें से किसी के खिलाफ कोई और भी कुछ बोलता है तो भी उसे यही लगता है कि यह बात उसके भाई ने ही चलाई है। इसलिए वह भाई को शत्रु की तरह देखने लगता है। इससे सबसे अधिक क्षति उसी भाई की होती है जो अविश्वास का ज्यादा बड़ा शिकार होता है। अपने अविश्वास के कारण वह जहाँ तहाँ अपने भाई की आलोचना करता है जो किसी न किसी माध्यम से उसके भाई के पास भी पहुँचती है। फिर हर क्रिया की प्रतिक्रिया का सिद्धांत आग में घी का काम करता

चलता है और स्थिति बद से बदतर होती जाती है। इसी अविश्वास के चलते, आज अदालतों में सबसे अधिक मुकदमे भाइयों के ही बीच में हैं। यह वही भाई होते हैं, जो कभी एक दूसरे के लिए जान तक देने को तैयार होते हैं। जिस परिवार में भाइयों के बीच अविश्वास होता है, वह परिवार सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ता चला जाता है और जिस परिवार में भाइयों के बीच विश्वास कायम रहता है वह हमेशा तरक्की की राह पर रहता है। ऐसे परिवार का सामाजिक सम्मान भी तुलनात्मक रूप से अधिक होता है।

• माता पिता और संतान के बीच जब तक अविश्वास जन्म नहीं लेता, तब तक परिवार में बहुत खुशनुमा माहौल रहता है, लेकिन जैसे ही बच्चे युवावस्था में पहुंचते हैं, वैसे ही वे माता-पिता से बहुत सी बातें छुपाने लगते हैं। इसलिए उन्हें बार-बार माता पिता के सामने झूठ बोलना पड़ता है। चूंकि यह झूठ बहुत दिनों तक छुप नहीं पाता, इसलिए जब यह माता पिता पर उजागर होता है, तो बच्चों के प्रति उनके मन में अविश्वास पैदा हो जाता है। फिर घर में कुछ भी सहज नहीं रहता। माता पिता बच्चों की हर बात को झूठ और बहाना समझते हैं। वे सच जानने के लिए प्रयास करते हैं तो उन्हें सामाजिक शर्मिंदगी का सामना करना पड़ता है। लोगों को पता चलता है कि वह अपने बच्चों पर शक करते हैं। इससे समाज में परिवार की छवि धूमिल होने लगती है। जब बच्चों की सही बात पर भी वह विश्वास नहीं करते, तो बच्चों के मन में भी माता पिता के प्रति कुछ कुछ शिकायत और कड़वाहट पैदा होने लगती है, जो पुनः घर के माहौल में तनाव और कटुता को बढ़ाने का काम करती है। अविश्वास के चलते माता पिता बच्चों की हर बात का सच जानने का प्रयास करते हैं। यह प्रयास कभी सफल होता है, कभी नहीं और कभी कभी उन्हें पता चलता है कि उनका संदेह गलत था। इससे बच्चे तो अपना व्यवहार बदलते नहीं हैं किंतु घर की शांति और सद्भाव विपरीत रूप से प्रभावित अवश्य होता है। अपने अविश्वास के कारण माता पिता को मानसिक शांति नहीं मिलती। उन्हें मनोवैज्ञानिक रूप से यह संतुष्टि या आश्वस्ति हासिल नहीं हो पाती कि उनके बच्चों का जीवन और भविष्य सुरक्षित है। विडंबना यह है कि माता-पिता बच्चों के सुरक्षित भविष्य और सफल जीवन के लिए प्रयास करते करते उस मुकाम तक पहुंच जाते हैं जहां वह बच्चों की कड़वाहट के शिकार हो जाते हैं। इसका कारण अविश्वास का वह पिंजरा भी होता है जिसमें वह कैद हो चुके होते हैं। माता-पिता की बच्चों के किसी बुरी आदत में न पड़ जाने के प्रति सजगता और अविश्वास में बाल बराबर की अंतर होता है। समाज में बच्चों की ओर से आँख मूद लेने के दुष्परिणाम उनके सामने होते हैं जिसके कारण वे अपने बच्चों पर नजर रखना चाहते हैं और इस प्रकार नजर रखना बच्चों को न तो तब रास आता है जब वे सचमुच भटकाव के रास्ते पर होते हैं और न तब, जब वे सही रास्ते पर होते हैं। इन दोनों ही स्थितियों में संतुलन स्थापित करना माता-पिता के लिए बहुत बड़ी चुनौती होती है। सामान्यत: सजगता पर अविश्वास हावी हो जाता है जो सब कुछ तहस-नहस कर देता है।

• हमारे कार्यस्थल या कारोबार में भी अविश्वास बेहद नकारात्मक भूमिका निभाता है। कार्यस्थल पर यदि अधिकारी और मातहत के बीच अविश्वास होगा तो यह उस संगठन की तरक्की और विकास के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा होगा। अधिकारी मातहत को काम सौंपने के बाद निश्चिंत होकर दूसरे काम में नहीं लग सकता

क्योंकि उसे हर समय मातहत द्वारा उसका काम ठीक से करने या न करने की चिंता लगी रहेगी। वह मातहत के काम की पूरी समीक्षा भी करेगा और काम के सही होने की अपने स्तर पर पुन: पुष्टि करेगा जिसमें समय और ऊर्जा का अपव्यय होगा। इसी प्रकार कर्मचारी का अपने अधिकारी की किसी भी बात पर, वादे पर या आश्वासन पर अविश्वास होगा तो वह पूरी प्रतिबद्धता के साथ अपना काम नहीं कर सकेगा। दोनों ही परिस्थिति में उस संगठन, अधिकारी व मातहत तीनों का ही नुकसान होगा।

• कितने ही प्रेम सम्बन्ध इस अविश्वास के शिकार हो जाते हैं। आजकल प्रेमी-प्रेमिका अपने अविश्वास के चलते एक दूसरे के मोबाइल में झाँकना चाहते हैं और फिर शुरू होता है, 'ये कौन है?' 'ये तुमसे बात क्यों करता है/करती है?' और 'इसकी इस पोस्ट का क्या मतलब है?' का सिलसिला। यह सिलसिला 'जब मैंने फोन किया था तो तुम्हारा फोन बिजी क्यों आ रहा था?' 'किससे बात हो रही थीं?' 'देर रात तक किसके साथ ऑन लाइन थे?' के कड़वे सवालों में उलझकर रह जाता है, जिसके परिणाम आरोप-प्रत्यारोप के रूप में सामने आते हैं। निश्चित रूप से प्रेमी-प्रेमिका इस सब के लिए तो प्रेम नहीं करते, किंतु अविश्वास आपसे जो न करा दे, कम है।

उपरोक्त विवेचना को किसी भी रिश्ते या किसी भी परिस्थिति पर लागू किया जा सकता है। विश्वास करने पर हर रिश्ते और परिस्थिति में उत्तरदायित्व का बोध विकसित होता है। यह समझना भी बेहद जरूरी है कि जब हम किसी व्यक्ति पर अविश्वास करते हैं तो हम उसे हमारे विश्वास को तोड़ने की एक वजह मुहैया करा देते हैं। हम उसे 'जब आप मुझे चोरी न करने पर भी चोर ही समझते हैं तो इससे अच्छा है कि मैं चोरी ही करने लगूं' जैसे कवर उपलब्ध करा देते हैं। इसके विपरीत, कई बार हमारा विश्वास चोर को भी 'मुझे किसी का विश्वास नहीं तोड़ना चाहिए' की बेडियों में जकड़ कर चोरी करने से रोक देता है। विश्वास करने पर भी कुछ मौकों पर व्यक्ति को नुकसान उठाना पड़ सकता है किंतु अविश्वास के पिंजरे में कैद होकर व्यक्ति हमेशा अपना तथा सामने वाले का नुकसान ही करता है। इससे उसके अपने व्यक्तित्व में नकारात्मकता विकसित होती है जो जीवन के अन्य क्षेत्रों को भी विपरीत रूप से प्रभावित करती है। विश्वास का अर्थ आँख मूंद कर विश्वास करना नहीं है अपितु उस अविश्वास से बचना है जो बिना किसी ठोस आधार के सभी को सवालिया निगाह से देखता है। अंतत: सब कुछ तो मनुष्य के हाथ में है नहीं, कुछ बातें ईश्वर पर भी छोड़ देनी चाहिएं। तुलसीदास जी का दोहा याद आता है :-

तुलसी भरोसे राम के, निर्भय हो के सोए
अनहोनी होनी नहीं, होनी हो सो होए।

विपिन जैन
कवि नगर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. 9873927829

आग लगाना-आग बुझाना

संसार में आदिकालीन मनुष्य की सबसे पहली और महत्वपूर्ण ईजाद आग का पैदा होना माना जाता है। आदमी ने आग पैदा की और उसे संभाल कर रखा। संभाल कर रखने पर उसने कई तरह के उपयोग करने शुरू किये। कच्चे भक्ष्य को पकाकर खाना शुरू किया। आग से गर्मी पैदा की। बन्दर से आदमी बनने की विकास यात्रा में आदमी ने कई कलाओं का विकास भी किया। इनमें से एक कला है, आग लगना। आग लगाने की कला में हर कोई निष्णात नहीं होता। हम पुराने व्याख्यानों में या रामायण और महाभारत में कुछ पात्र ऐसे पाते हैं जो आग लगाने में दक्ष थे। रामायण में मंथरा ने केकैयी के मन में आग न लगाई होती तो रामायण का रूप दूसरा होता। महाभारत में भी कई पात्र आग लगाने का कार्य करते हैं। नारद जी खबर लाते थे, पर आग लगा जाते थे। सार यह है कि आग लगाना अन्य संस्कृतियों में रहा हो या न रहा हो पर हमारी संस्कृति का अंग जरूर रहा है। आग लगाना और आग बुझाना, एक ही उपकरण के अलग-अलग अंग हैं। कुछ लोग आग लगाने में माहिर होते हैं जो आग लगाकर खिसक लेते हैं और तमाशाई बन जाते हैं। कुछ दूसरों की लगी आग में हाथ सेंकने लगते हैं। राजनीति में तो कहा ही जाता है कि किसी के घर आग लगे तो रोटी सेक लें। आग लगाना और आग भड़काना एक ही कला के दो हिस्से हैं। किसी ने एक शेर लिखा है-

लोग टूट जाते हैं एक घर बनाने में,
तुम तरस भी नहीं खाते घर जलाने में।

आग लगाना अगर एक विध्वंसक कर्म है, तो आग जलाना एक पवित्र कर्म है। आग जलाकर लोग चौपाल में अलाव के चारों तरफ बैठ जाते हैं। चूल्हे में आग लगे तो खाना तैयार होता है। अग्नि के फेरे लेकर स्त्री-पुरुष दाम्पत्य के बन्धन से बंध जाते हैं। विदेशी वस्त्रों की होली गाँधी जी ने जलाई थी। होली के दहन में सत्य की विजय हम पाते हैं। अग्नि से दीप जलते हैं।

अग्नि से मशाल जलती है। आग लगाना साहित्य और फिल्मों में अलग-अलग रंग-रूप में दिखाई देता है। फिल्म कागज के फूल में गुरूदत्त अपना आक्रोश दिखाते हैं- 'जला दो जला दो यह दुनिया जला दो'। इसी तरह दिलीप कुमार गंगा जमुना में संवाद बोलते हैं - 'धन्नो तुम मर गई तो मैं दुनिया में आग लगा दूंगा'। आग लगाना एक मुहावरा है - कभी ऐसा भी वक्त गुजरा है, जब बहुओं को जला दिया जाता था। लोग दंगों में सरकारी सम्पत्ति को आग लगा देते हैं और उसे बहादुरी का काम समझते हैं कुछ करने के लिए भी दिल में आग पैदा होना जरूरी है। दुष्यन्त का एक शेर है -

तेरे दिल में गर नहीं तो मेरे दिल में ही सही
जले कहीं आग लेकिन आग जलनी चाहिए।

आग में घी डालने का काम भी लोग बखूबी करते हैं। आग लगाना एक कला है। उसी तरह आग बुझाना भी एक कला है। किसी को आग लगाने में खुशी मिलती है तो किसी बुझाने में। आज आग को एक पूरा विषय मानकर शिक्षा में शामिल किए जाने की जरूरत है जिसमें आग लगाने और बुझाने का पाठ्यक्रम रखा जाये। आग बुझाने का काम अग्निशमन वाले कर लेते हैं, मगर लगाने के काम में प्रशिक्षण जरूरी है ताकि इस तरह आग लगाई जाये जो किसी को पता भी न चले और काम भी हो जाये। घर फूंक तमाशा देखने वाले भी दुनिया में मिलते हैं। कबीरदास ने पहले ही कह दिया है -

कबिरा खड़ा बाजार में लिये लकुटिया हाथ,
जो घर फूके आपनो चले हमारे साथ।

आग कई तरह की होती है। नफरत की आग, बदले की आग, प्रेम की आग, जलन की आग, झगड़े की आग और विद्रोह की आग। आग लगाने में कुछ चीजे सहायक के रूप में सामने आती हैं। जिनमें एक तत्व घी भी है। कुछ लोग लगाते हैं तो कुछ भड़काते हैं। अपना-अपना गुण है। सूखी घास या लकड़ी को जल्दी आग पकड़ती है। ऊपर से पेट्रोल डाल दिया जाये तो जरा-सी चिंगारी अपना काम कर जाती है। संक्षेप में कह सकते हैं कि दोनों की काम महत्त्वपूर्ण है कहीं आग लगाना तो कहीं बुझाना।

रजनी सिंह
डिबाई, उत्तर प्रदेश
मो. : 9412653980

परिवार

'परिवार' शब्द की उत्पत्ति आदिकाल में ही हो गई थी। उसका विकास धीरे-धीरे आवश्यकताओं से उत्पन्न हुई परिस्थितियों से होता रहा। जैसा कि वर्तमान में भी दिन प्रतिदिन परिवर्तन की झलक मिल रही है। नर - नारी से बना परिवार, अपने नैसर्गिक आकर्षण से उत्पन्न विकास को जन्म देता रहा है।

परिवार दो तरह के होते हैं: (1) संयुक्त परिवार और (2) एकल परिवार। संयुक्त परिवार में माता - पिता, बच्चे, दादा - दादी, चाचा-चादी, ताऊ-ताई, बुआ आदि भी हैं। एकल परिवार में माता-पिता और अविवाहित बच्चे होते हैं।

परिवार एक संस्था है जिसमें अनेक पदाधिकारी है, जिनके अपने - अपने कर्तव्य और अधिकार होते हैं, जिनसे यह परिवार रूपी संस्था संचालित होती है। लेकिन कुछ मौलिक कर्तव्य समान हैं जैसे - प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, संवेदना, दया और समर्पण। परिवार चूंकि आत्मिक - शारीरिक संबंधों से निर्मित हुआ है अत: मानवोचित गुण मनुष्य को एक दूसरे से बाँधे रखने में अहम् भूमिका निभाते हैं।

परिवार का विस्तृत पटल समाज और समाज का विशाल रूप राष्ट्र और विश्व होता है। इससे स्पष्ट होता है कि किसी भी राष्ट्र को सुगठित, सुव्यवस्थित और अनुशासित बनाने में परिवारों की बहुत बड़ी भूमिका होती है। ऐसा करने के लिए परिवार के प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन सुनिश्चित कर उन्हें ईमानदारी से निभाएं ताकि आने वाली संतानों को आदर्शभरा परिवेश मिल सके।

हमारे परिवारों को अपने संस्कारों और सभ्यताओं को अपने जीवन में अमल लाने की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी विकसित जीवन - शैली को भौतिक संसाधनों के इस्तेमाल की। हमें अपने वेद - शास्त्रों, गीता - रामचरिमानस के व्यवहारिक पहलुओं को अपनी जीवन पद्धति में शामि करना होगा। यह परिवार की एक दिनचर्या का अंग होना चाहिए। तभी हम 'परिवार' शब्द की परिभाषा सार्थक कर पायेंगे। कहा भी जाता है कि एक अच्छा परिवार संस्कारों की पाठशाला होता है। उसके सदस्य प्रेम, सहयोग, समर्पण और ईमानदारी से आपस में एक दूसरे के हितार्थ वचनबद्ध होकर कार्य करते हैं।

परिवार, समाज और राष्ट्र की विकास में अहम भूमिका निभाते हैं। हम कैसे भूल सकते हैं अपने देश के वीर और वीरांगनाओं के बलिदानों को जिन्हें अपने परिवार में माता - पिता से स्वाभिमान और त्याग की शिक्षा मिली थी। उसे से प्रभावित होकर उन्होंने देश के विकास और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर किया था। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व और कृतित्व इसका ज्वलंत उदाहरण है।

विनय शुक्ला
मास्को, यूएसएसआर
ईमेल : shuklamoscow@gmail.com

जब हिंदी ने दिया सहारा

बात 2005 की है, भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ए पी जे अब्दुल कलाम रूस के औपचारिक दौरे पर मास्को आए थे। अनेक भेंटों और वार्ताओं के बीच मास्को के बाहर स्थित रेउतोव शहर में एन पीओ माश नाम के प्रतिष्ठान को देखने गए। यहाँ विभिन्न प्रकार की मिसाइलों का निर्माण किया जाता है। इस प्रतिष्ठान से डा. अब्दुल कलाम का पुराना और खास रिश्ता रहा है, जब वे प्रधानमंत्री के रक्षा सलाहकार और रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन (डीआरडीओ) के प्रमुख थे। 1990 के दशक में उन्ही के निर्देशन में भारत और रूस के वैज्ञानिकों ने मिल कर एक विलक्षण और अचूक क्रूज मिसाइल का विकास किया जिसका नाम अब छोटा-बड़ा सब जानते हैं। जी हाँ भारत के ब्रह्मास्त्र के रूप में विख्यात यह ब्रह्मोस क्रूज मिसाइल है और डा० अब्दुल कलाम द्वारा सुझाए गए इस के नाम में मित्र-देशों की दो नदियों का संगम है - भारत की प्रचंड ब्रह्मपुत्र और रूस की सौम्य नदी मोस्कवा, जिसके तट पर मास्को बसा है।

हाँ, तो बात 2005 की है, तब मैं मास्को में पीटीआई एजेंसी का संवाददाता था और राष्ट्रपति की सरकारी यात्रा पर प्रकाश डालना तो मेरे कार्यभार का अंग था ही। भारत के राष्ट्रपति विदेश यात्रा के दौरान पत्रकार सम्मेलन नहीं करते हैं। फिर भी मिसाइल प्रतिष्ठान के दौरे के समय दर्जनों रूसी और भारतीय फोटोग्राफर और टीवी कैमरामैन तैनात थे जो डा. अब्दुल कलाम से दो शब्द पूछना चाहते थे। प्रेस अधिकारियों ने कड़ी हिदायत दे रखी थी कि यह सिर्फ फ़ोटो सत्र है। फिर भी रूसी पत्रकार भारत के राष्ट्रपति से जोर-जोर से सवाल पूछने लगे परंतु अंगरक्षक उन्हें तेजी से बाहर ले जाने लगे। जैसे ही उन्होंने बाहर निकलने के लिए दहलीज पर पैर रखा, मैं जोर से हिंदी में चिल्लाया: "राष्ट्रपति जी, कृपया यहाँ आपके पुराने सहयोगियों से हुई बातचीत के बारे में हमें भी कुछ बताइए।" बस, इतना सुनते ही डा. अब्दुल कलाम ठिठक कर वापस मुड़े और बड़े उत्साह के साथ अपने पुराने रूसी सहयोगियों से हुई बैठक और ब्रह्मोस मिसाइल के विकास की योजनाओं के बारे में बताने लगे।

पत्रकार तो यही जानने के लिए घंटों से इंतजार कर रहे थे, परंतु अगर हिंदी में मैंने उन्हें "राष्ट्रपति जी" कह कर संबोधित न किया होता तो हम सब खाली हाथ लौट आते।

संदीप कुमार सिंह,
गुलावठी, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश
मो. नं.–9456814243, 8279796925
ईमेल–sandeepksingh1782@gmail.com

अब्दुल

आज फिर अनायास ही अब्दुल की याद ताजा हो गई। अब्दुल ने उस सरकारी कालेज में कक्षा 6 से 8 तक की शिक्षा प्राप्त की थी, जिसमें मैं कुछ वर्षों तक अध्यापक था। उसकी कक्षा में मेरा घण्टा नहीं होता था इसलिए उससे मुलाकात केवल सुबह कालेज में प्रार्थना के समय तथा साल में दो बार ही हो पाती थी, एक 15 अगस्त और दूसरी 26 जनवरी।

दिखने में आम छात्रों से बिल्कुल अलग था उसका शांत स्वभाव, प्रतिदिन कालेज आना और पूरी तन्मयता से सभी विषयों को पढ़ना, गुरुकुल के शिष्यों की याद दिला देता एक और हुनर उसके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देता, देशभक्ति गानों को गाने का। देशभक्ति गानों को ऐसा तन्मय होकर गाता कि लोगों के रोंगटे खड़े हो जाते।

शारीरिक शिक्षा के अध्यापक का ट्रांसफर हो जाने से प्रिंसिपल ने शारिरिक शिक्षा विभाग का चार्ज मुझे सौंपा क्योंकि मैं उनका रूम पार्टनर था और खेल प्रतियोगिताओं में उनका सहयोग करता था। मुझे हिंदी विषय पढ़ाने के साथ-साथ साल में 2 महीने खेल प्रतियोगिताएं कराना तथा सुबह की प्रार्थना कराने का काम सौंपा गया। शारीरिक शिक्षा का चार्ज होने के कारण 15 अगस्त और 26 जनवरी को तहसीलदार साहब के यहाँ पाँच छात्रों को राष्ट्रगान के लिए ले जाना होता था क्योंकि तहसीलदार हमारे कालेज के पदेन सचिव थे।

प्रत्येक वर्ष की तरह फिर से 15 अगस्त का शुभ अवसर आया। प्रत्येक वर्ष की तरह अबकी बार भीएक हफ्ते पहले 15 अगस्त में राष्ट्रगान और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए छात्रों को खोजने लगा। रोजएक घण्टा छात्रों द्वारा तैयार किए गए कार्यक्रमों को देखता और उन्हें समझाता लेकिन बार-बार निगाहे उस अब्दुल को ढूँढती पर वह नजर न आता। सभी छात्र आकर अपना-अपना कार्यक्रम बताते और मैं उनसे बार-बार पूछता, अब्दुल कालेज क्यों नहीं आता।

रोज मैं छात्रों से अब्दुल के बारे में पूछता रहा। अबकी बार उसे कक्षा नौ में आना

था। मैं असमंजस में रहा फिर मैंने सोचा कि हो सकता है कि उसने किसी दूसरे कालेज में प्रवेश ले लिया हो।

15 अगस्त सुबह सात बजे कालेज में पहुँचा तो देखा अब्दुल सबसे पहले मौजूद। साफ-सुथरी कालेज की पोशाक में सबसे अलग दिख रहा था। उसे देखकर मुझे बहुत अच्छा लगा। उसकी विनम्रता, अनुशासन और अध्यापकों से बोलने की तहजीब की वजह से उससे कुछ ज्यादा ही लगाव हो गया था। 15 अगस्त में पाँच छात्र तहसील में राष्ट्रगान गाने के लिए जाने थे, जिन्हें मैंने पहले ही चुन लिया था। उसके आ जाने से अब छः छात्र हो गए। वहाँ बच्चों को नुक्ती के साथ कभी-कभीएक कॉपी औरएक पेन मिल जाता।

फिर अपने यहाँ भी वही बच्चे राष्ट्रगान गाते और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेते थे। कालेज में भी इन छात्रों को कुछ न कुछ उपहार अवश्य मिलता। प्रिंसिपल साहब इस मामले में बहुत उदार थे। जब भी उनसे छात्रों को उपहार देने की बात होती तो वे केवल यह पूछते कितने पैसे चाहिए। कभी मेरे निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करते। मैं जो चाहता छात्रों को उपहार के रूप में दिलवा देता। छात्र पुरस्कार पाकर ऐसे खुश होते जैसे वास्तव में अंग्रेजों से आजादी आज ही मिली हो।

मैं सभी छः छात्रों को लेकर तहसील पहुँचा और हम सबने राष्ट्रगान को गाकर स्वतंत्रता दिवस की याद ताजा की। अब्दुल ने 'ऐ मेरे वतन के लोगों तुम खूब लगालो नारा....गीत गया।

स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य में भाषण शुरू हुए। तहसीलदार साहब ने सभी को शपथ दिलाई-'हम प्रतिज्ञा करते हैं कि न हम भ्रष्टाचार करेंगे और न ही हम भ्रष्टाचार का हिस्सा बनेंगे।' मेरे मन में विचार आया कि यह शपथ कितनी देर के लिए ली जा रही है। अभी जब तक स्वतंत्रता दिवस मनाया जा रहा है या पूरे दिन के लिए।

मैंने साहब के अर्दली से कहा कि कालेज में राष्ट्रगान होना है, हम जाएं? उसने साहब से पूछा तो साहब ने कहा जाने दो। सभी छात्रों को नुक्ती, एक-एक कापी और एक-एक पेन दे दो।

मैं छात्रों को लेकर कालेज की ओर चलने लगा तो अब्दुल ने नमस्कार किया, मैं असमंजस में पड़ गया और उससे पूछा, "क्यों अब्दुल कालेज नहीं चलोगे?"
"सर, अब मैं कालेज में नहीं पढ़ता हूँ।"
" फिर कहाँ? किसी दूसरे कालेज में पढ़ते हो"
"नहीं, सर अब मैं नहीं पढ़ता हूँ।"
मुझे उसके बारे में जानने की और उत्सुकता होने लगी। ऐसा बच्चा जिसमें विद्यार्थी के सभी गुण हैं, उसने पढ़ाई क्यों छोड़ दी।
"क्यों?"
"मामू ने मना कर दिया कि अब तुम स्कूल नहीं जाओगे।"
"मामू ने मना कर दिया! तुम्हारे पिता जी ने क्या कहा?"
"हमारे अब्बू नहीं हैं"
"तुम्हारे अब्बू कहाँ गए?"
"अम्मी कहती हैं कि वे अल्लाह के पास चले गए।'

मुकेश निर्विकार
डीएम कॉलोनी, बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश
मो. 7409622722/9411806433

कटे हाथों का मुआवजा

एक किसान था। वह खेती-बाड़ी करता था। खेती ही उसकी आजीविका का साधन थी। उसके पुरखों के लिए भी खेती ही जीवनयापन का सहारा रही थी। उसके बच्चे भी अपने भरण-पोषण की आस इसी खेती से लगाये बैठे थे।

वह किसान और उसके बच्चे इस खेती से आगे कुछ अैर सोच भी नहीं पाते थे। उन्हें सोचने की जरूरत भी नहीं पड़ी थी। आखिर उन सब की जिन्दगी कट ही रही थी आराम से, इस खेती के बूते।

एक दिन किसान ने एक भयावह स्वप्न देखा। उसने देखा कि उसके खेतों से फसल गायब हो गयी हैं। उसके खलिहान अब अन्न पैदा नहीं कर रहे हैं, बल्कि, उनमें नोटों की गड्डियाँ उग आयी हैं, लेकिन उसके दोनों हाक कट गए हैं, जिनसे खून बह रहा है...

इस भयावह दु:स्वप्न से किसान की नींद उचट गयी और वह हड़बड़ाहट में उठ बैठा। उसका कलेजा उड़ रहा थी। उसकी धड़कन बढ़ी हुई थीं तथा उसके चेहरे पर हवाईयां उड़ रही थीं।

किसान चिन्तित हो उठा। उसके फिक्र हुई-'भला यह भी कोई बात हुई। आखिर इंसान तो अन्न ही खायेगा, कोई नोट थोड़ ही खायेगा। ढोर-ढंगर भी चारा और हरियाई ही खाकर दूध दे सकेंगे, कोई नोट खाकर थोड़े ही दूध दे सकते हैं।"

किसान ने लोटाभर पानी पीया तथा अपनी आंखों पर ठंडे पानी के छींटे मारे। तब जाकर वह इस दु:स्वप्न से उबर सका। उसने स्वयं को समझाया कि वह नाहक ही इतना भयभीत हो उठा था। यह तो महज एक सपना था, हकीकत थोड़े ही थीं। उसने अपने हाथ देखे जो साबुत थे।

लेकिन कुछ दिनों बाद एक दिन किसान की हालत फिर से वैसी ही हो गयी। उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। उसका कलेजा किसी भयावह दु:स्वप्न के दलदल में धंसा जा रहा था। उसके पैंरों तले जमीन खिसक रही थी। उसकी आंखों के सामने से उसके खेतों की हरियाली गायब हो चुकी थी। उसके खेतों ने सचमुच अन्न उगाना छोड़ दिया था उसके खेतों में नोटों की गड्डियां उग आयीं थीं...

इस बार भी किसान ने अपनी आँखों पर ठंडे पानी के लाख छींटे मारे, किन्तु वह इस बार दु:स्वप्न से बाहर नहीं आ सका क्योंकि यह मात्र स्वप्न नहीं था, बल्कि यह कटु यथार्थ था। इस बार किसी डेवलपमेंट ऑथर्टी के लिए सरकार ने उसके गांव की भूमि अधिग्रहित करने का फैसला ले लिया था।

अभिनय

वह आई थी अपनी ससुराल से, शिकवा-शिकायतों की गठरी लेकर, सौ-सौ जख्म सीने में दबाए, अपनी पूरी व्यथा-कथा और बेबसी का अम्बार लिए, अपने पीहरियों को बताने के लिए। कहीं यह भी संकल्प लेकर कि अब भले ही कुछ भी हो जाए, लेकिन अब ससुराल वापस नहीं जायेंगी, मरने-खपने के लिए हरगिज वापस नहीं जायेगी।

लेकिन उसने अपने पीहर में बीमार बाप देखे, मुरझायी माँ देखी, बेरोजगार भाई देखा, दरवाजे पर साहूकार की कर्कश आवाज सुनी, कुंवारी बहिन के सिर में सफेद होते बाल देखे।

आज वह जा रही है वापस अपनी ससुराल, अपनी अनकही दास्तां सीने में दबाए... लेकिन अपने चेहरे पर जबरन मुस्कान बिखेरे, जीवन के रंगमंच पर सर्वश्रेष्ठ अभिनय प्रस्तुत करती हुई...

डॉ प्रभाकर जोशी
देव प्रयाग, उत्तराखंड
ईमेल : pjoshivedhshala@gmail.com
मो. : 9557140296

उत्सव

शांत समुद्र में मछलियाँ उछल कूद रहीं थी। कुछ मछलियाँ आनन्द का अनुभव करती अपने आस पास ही तैरती कूद रही थी वहीं कुछ अहँका।री मछलियाँ अपने को विशेष दिखाती उनके बीच खलबली मचाती आकाश की ओर ऊँची छलांग लगा रही थी। अहँकार से भरी मछलियों अचानक समुद्र की सीमा पार कर रेतीले तटो की ओर कूदने लगीं। उनके दुस्साहस से बाकी मछलियाँ स्तब्ध थी। छिछले तट पर समुद्र की छलार आती और उन्हें फिर अपने गहरे जल में ले जाती। मगर अहँकार से भरी मछलियां फिर लम्बी छलांग लगाकर रेतीली भूमि पर आ जाती। समुद्र उन्हें वापस लाते थकने लगा मगर वह मानने को तैयार नहीं थी।

दोपहर हो गयी मगर दम्भ से भरी मछलियाँ संतुष्ट नहीं थी। वह कुछ ऐसा करना चाहती थी जो अभी तक मछलियों की दुनिया में किसी नहीं किया था। अचानक उन्होंने सभी मछलियों को एक जगह इकठ्ठा होने को कहा। सभी मछलियाँ अहँकारी मछलियों के डर से एक जगह आ जुटीं। दम्भ से भरी मछलियों की अगुवाई कर रही प्रमुख मछली ने आँख बंद किये घोषणा की कि वह मछलियों की दुनिया में नया कीर्तिमान बनाने का निर्णय कर चुकी हैं। बाकी मछलियों ने एक दूसरे की ओर प्र-श्नभरी दृष्टि से देखा। प्रमुख मछली बोली, वह अब इतनी दूर तक कूदेंगी जहाँ आज तक किसी मछली ने स्वप्न में भी नही सोचा होगा। अच्भे सी घिरी बाकी मछलियों के जीवन में यह अनोखी घटना होने जैसी थी। दम्भ से भरी मछलियों ने गर्व से सिर उठाते दूर तक

फैले रेत के तट को इस तरह निहारा मानो यह उनके लिए पार करना कुछ भी नहीं है। उधर उनका प्राणदाता समुद्र उनके इस दुस्साहस से भरे निर्णय से अनजान शांति से अपनी लहरों को उपर नीचे गिरा रहा था।

अहँकारी मछलियाँ को समुद्र पर पूरा भरोसा था कि वह एक दास की तरह उन्हें वापस अपने भीतर समेट लेगा। आखिर वह क्षण भी आ गया जब दम्भ से भरी मछलिया एक कतार में अपने दुस्साहस भरी कूद के लिए आ खड़ी हुई। एक मछली के तेज सीटी जैसी आवाज करते ही सभी अहँकारी मछलिया पूरा बल लगाते आकाश की ओर कूद गयीं, फिर तिरछी होते तेजी से तट की ओर चली। सचमुच उनकी यह कूद आज चमत्कारी थी। वह इतनी दूर थी कि बाकी मछलियों की आँखो से लगभग ओझल सी हो गयी थी। गर्व से रेतीले तट पर गिरते ही वह दंभ से, मुस्कारा उठी। अपनी अनोखी विजय पर वह चिल्लाने लगी। समुद्र वहाँ से ठीक से दिख भी नहीं रहा था। कुछ क्षण विजय की मादकता में वह रेतीले तट पर पड़ी रहीं। मगर फिर उनकी सांस तेज होने लगी, बेचैनी बढ़ने लगी। उनका दास समुद्र अभी तक उन्हें समेटने नहीं पहुँचा था। उधर समुद्र को जब मछलियों की नादानी की खबर लगी तो वह पूरे वेग से उंमडते उन तक पहुँचने की कोशिश में जुट गया। ज्वार भाटा की सीमा तक जाकर भी वह मछलियों तक नही पहुँच पा रहा था। उधर बिना जल के मछलियाँ अचेत होने लगीं। जीवन संकट में घिर चुका था। बाकी मछलियाँ उनके जीवन के लिए प्रार्थना में जुट गयी। सब आकाश की ओर देखने लगी। समुद्र भी हार कर ईश्वर की स्तुति करने लगा। अचानक आकाश बादलों से ढक गया। गर्जना के साथ बूँदे गिरने लगी। तेज बारिश से नदी नाले उमड़ आये। डूबते सांसो को प्राण मिलते ही मछलियों में हलचल होने लगी। बारिश से उमड़े नालों के तेज बहाब में वह समुद्र की ओर बहने लगी। समुद्र के आगोश में पहुँचते ही मछलियों की दुनिया में जीवन का उत्सव फिर से शुरू हो गया।

डॉ. नीलम गर्ग
हापुड़, उत्तर प्रदेश
मो. : 9458050725
ईमेल : drneelamgarg7@gmail.com

अस्तित्व की तलाश

अपने पति विनय का एक-एक शब्द शुभ्रा के मानस पर हथौड़े की तरह बरस रहा था। बहुत चाहकर भी वह आँसुओं को बहने से रोक नहीं सकी और बिना कुछ कहे रसोई में आ गई और शाम के खाने की तैयारी करने लगी। अपनी सास और पति के खाना खाने के बाद वह अपनी बेटियों पलक और पायल के कमरे में गयी, तो देखा दोनों ही रोते-रोते सो गई थीं। उसने धीरे से उनके बालों को सहलाते हुए उन्हें जगाया और खाने का आग्रह करने लगी। दोनो बेटियाँ आर्थिक रुप से पूर्णतः पिता पर आश्रित माँ की मजबूरी समझती थीं फिर भी पलक आज उनसे प्रश्न कर ही बैठी। उसने कहा- "माँ क्या इस घर में आपके प्रेम, त्याग, समर्पण और विश्वास का कोई मूल्य है? क्या आप केवल पिता की परछाई हैं, आपका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व है या नहीं। पायल ने डाँटकर पलक को चुप करा दिया कि माँ पहले से ही दुखी हैं, उन्हें अपनी बातों के तीर चलाकर और पीड़ित मत करो। तीनों ने किसी तरह दो-तीन निवाले गले से नीचे उतारे और पानी पीकर अपने-अपने बिस्तर पर चली गईं। पर नींद किसी की आँखों में भी नहीं थी।

शुभ्रा सोच रही थी कि कुछ भी तो नहीं बदला। कल जिस रास्ते पर वह खड़ी थी, आज उसकी दोनों बेटियाँ वहीं खड़ी हैं। कल उसकी माँ की आँखों में बेबसी और मायूसी थी तो आज वह अपनी माँ की भूमिका में आ गई है। यही सब सोचते-सोचते वह अतीत की किताब के पन्ने पलटने लगी। उसने बारहवीं क्लास में पूरे प्रदेश में टॉप किया था।खुशी से चहचहाते हुए उसने अपने पिता को बताया कि वह डॉक्टर बनना चाहती है, पर उसके पिता ने स्पष्ट मना कर दिया। पिता के शब्द जैसे आज भी उसके कानों में गूंज रहे थे- " शुभ्रा तुम कब समझोगी कि तुम एक लड़की हो। वंश तो लड़के से चलता है, लड़की से नहीं। मेरे पास इतने पैसे नहीं हैं कि मैं तुम्हारी शादी भी करूं और तुम्हारी पढ़ाई पर खर्चा भी। दिन में सपने देखना छोड़ दो। अब तुम शादी लायक हो गई हो। मैं जल्दी से जल्दी

तुम्हारी शादी करके अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहता हूँ। जब तक तुम्हारा रिश्ता कहीं पक्का होता है, तब तक बीए में एडमिशन ले लो। इससे ज्यादा मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सकता।"

उसकी माँ ने कुछ बोलना चाहा तो उसकी दादी ने माँ को डांटते हुए कहा कि लड़की को घर का काम- काज सिखाओ। वरना ससुराल में नाक कटा देगी। साथ ही उन्होंने घोषणा-सी करते हुए कहा कि लड़कियों के हाथ जल्दी ही पीले कर देने चाहिएँ, अन्यथा क्या पता कब इज्जत से खेल जाएँ। अपने पिता और दादी के सामने उसकी एक न चली और बीए की फाइनल परीक्षाओं से पहले ही उसका रिश्ता पक्का कर दिया गया। उसके लिए एक अच्छी बात यह रही कि भाई की सिफारिश पर वह बीए फाइनल की अपनी परीक्षाएँ दे सकी और कम-से-कम ग्रेजुएशन की डिग्री उसे मिल गई।

विनय को पति के रूप में पाकर वह बहुत खुश थी उसे लगता था कि विनय आज की पीढ़ी का युवक है। वह मेरे मन की स्थिति को समझेगा और शायद यहाँ मैं अपनी पढ़ाई आगे बढ़ा सकूँगी, लेकिन जल्दी ही उसकी इस आशा पर भी तुषारापात हो गया। विनय तो उसके पिता से भी एक कदम आगे था। छोटी-छोटी बातों पर वही उसकी सास बन बैठता था। बात-बात पर उसे टोकना, हिदायतें देना, डाँटना और सभी गलतियों के लिए उसे ही जिम्मेदार ठहराना विनय के चरित्र का एक अंग बन गया था। जब तक वह दिन में कई बार उसको अपमानित नहीं कर लेता था, तब तक जैसे उसका खाना ही हजम नहीं होता था। शुभ्रा ने कभी अपनी माँ को पिता का विरोध करते हुए नहीं देखा था। उसके संस्कारों में भी यही भाव आ गए और वह भी कभी अपनी सास या अपने पति का प्रतिवाद नहीं करती थी। अपनी जुड़वा बेटियों के जन्म के बाद उसकी स्थिति और भी बदतर हो गई क्योंकि अब वह पुनः मां नहीं बन सकती थी और उसके पति की बेटे की इच्छा अधूरी रह जाने के कारण वह शुभ्रा और दोनों बेटियों को बात-बात पर डाँटता रहता था। शुभ्रा ने अपने परिवार की इज्जत बनाए रखने के लिए इसे अपनी नियति मानकर समझौता कर लिया पर आज अतीत स्वयं को दोहरा रहा था। उसकी दोनों बेटियाँ बारहवीं कक्षा में टॉप करके अंतरिक्ष वैज्ञानिक बनना चाहती थीं पर उसका पति विनय उसके पिता की तरह ही उनकी शादी कर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाना चाहता था। आज उसकी बेटी ने ही उससे प्रश्न नहीं पूछा था, बल्कि उसका मन भी उस से तरह-तरह के सवाल कर रहा था। क्या उसे अपनी माँ की तरह खामोश रहना है या अपनी बेटियों का भविष्य बनाने के लिए, अपने अस्तित्व पर लगे प्रश्नचिन्ह को मिटाने के लिए एक नई दिशा खोजनी है। इसी अन्तर्द्वन्द्व से गुजरते हुए उसने सहसा एक दृढ़ निश्चय कर लिया और सो गयी।

सुबह उसने सबसे पहले उठ कर अपनी दोस्त स्वाति से बात की और उसके प्रशिक्षण केंद्र में अपना नाम लिखा दिया। वह जानती थी कि पति से इस संदर्भ में बात करना पत्थर पर सिर फोड़ने के समान है। अतः उसे कोई ठोस कदम

उठाना होगा और उसका आर्थिक रूप से सक्षम होना अत्यंत आवश्यक है। पर वह कोई भी कदम उठाने से पहले एक बार अपने पति को समझाना चाहती थी। जब उसने इस संदर्भ में विनय से बात करनी चाही तो विनय ने उसे सीधे-सीधे बोल दिया - "यह मेरा घर है। यहाँ सब कुछ मेरी इच्छा के अनुसार ही होगा। तुम लोगों को मेरी बात नहीं माननी है तो अपना इंतजाम कहीं और कर लो या किसी नदी-नाले में डूब मरो।" यह कहकर वह तीर सा घर से निकल गया। क्योंकि विनय अच्छे से जानता था कि मायके में भी शुभ्रा का साथ कोई नहीं देगा और वह पूरी तरह मुझ पर ही आश्रित है। वह इसी बात का फायदा उठा रहा था और पूरी तरह निश्चिंत था कि उसकी पत्नी घर छोड़कर नहीं जा सकती। पर अब बात शुभ्रा के सपनों की नहीं थी, अब बात थी उसके बेटियों की और उनके भविष्य की। और एक माँ ने पहले से चले आ रहे चक्र की कड़ी बनने से इंकार कर दिया और अपनी और अपनी बेटियों की डिग्रियाँ लेकर थोड़े से सामान के साथ वह घर से निकल पड़ी अपने अस्तित्व तलाश में।

दृश्य 2

पलक और पायल के कदम जमीं पर नहीं पड़ रहे थे। वे मिठाई खरीदकर तेजी से घर की ओर चल पड़ीं। शुभ्रा दरवाजे पर ही उनका इंतजार कर रही थी। उसने पूछा- "आज तो बहुत देर लगा दी बिटिया, कहाँ रह गई थीं?" उत्तर में पलक ने मिठाई का डिब्बा आगे कर दिया और दोनों माँ के गले लग गईं। तीनों की आँखें मिली और तीनों के होठों पर एक मासूम सी मुस्कान खेल उठी। उसकी दोनों बेटियाँ आज अंतरिक्ष वैज्ञानिक बनकर अपनी मंजिल पा चुकी थीं। आज पूरा घर तीनों की हंसी से गुंजायमान था। खाना खाकर शुभ्रा अपने बिस्तर पर आ गई और उसने खिड़की का पर्दा थोड़ा सरकाया। जहाँ तक नज़रें जाती थीं वहीं दूर-दूर तक फैली ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ, रौशनी से नहाई सड़कें और सड़कों पर भागती-दौड़ती जिंदगी। तभी सहसा उसकी नजर आसमान की ओर उठी। बादलों से रहित साफ-स्वच्छ नीला आसमान और उस आसमान में टिमटिमाते चमकीले तारे। उसे लगा कि उसके जीवन का आसमान भी अनोखे प्रकाश से जगमगा उठा है। आज उसने अपने अस्तित्व के साथ-साथ अपनी बेटियों का वजूद भी बचा लिया था। उसने धीरे से अपनी आँखें बंद की और नए सपनों की उड़ान भरने लगी।

शिशिर शुक्ला
शाहजहांपुर, उत्तर प्रदेश
मो. : 7388896262
ईमेल : nishuphysics@gmail.com

स्वतंत्रता या दासता

वृक्ष से एक पत्ता टूटकर अलग हुआ..
अलग होते ही उसकी प्रसन्नता की शायद कोई सीमा न थी..

वो ख़ुद को बेहद कृतज्ञ महसूस कर रहा था, हवा के उस झोके के प्रति, जिसके कारण वह एक बंधन से मुक्त हो चुका था...

वो यह सोचकर अतिप्रफुल्लित था कि अब उसे एक स्वच्छंद जीवन जीना है..

सारे बंधनों से दूर होकर अपनी स्वतंत्र अभिलाषाओं के पंख लगाकर उड़ना है...
किंतु ये क्या!!!!!!!

अचानक से उसने अनुभव किया कि वह उड़ तो रहा है किंतु अपनी इच्छा के विरूद्ध..

वो किस दिशा में जा रहा था, इससे वो सर्वथा अनभिज्ञ था...

धीरे धीरे वो जान चुका था कि हवा का वही झोका, जिसने उसे एक दिन झूठी स्वतंत्रता की अनुभूति कराई थी, वृक्ष से अलग होते ही उसे पूर्णतया अपने शिकंजे में ले चुका था....

उसका यह भ्रम, कि अब उसकी इच्छाओं पर स्वयं उसका प्रभुत्व है, उसके मानसपटल से मिट चुका था...

वो जान चुका था कि अब वह मात्र एक दास है, एक स्वतंत्र दास....

अचानक वायु के तीव्र झोके ने उसे अपनी दासता से स्वतंत्र करते हुए, सदैव के लिए कीचड़ के सान्निध्य में धकेल दिया.....

वृक्ष का पत्ता दो बार स्वतंत्र हुआ किंतु दोनो बार उस पर दासता भी थोपी गयी...

वृक्ष की स्मृतियां उसे बार बार करुण रुदन के लिए विवश कर रही थीं...

वो बार बार बहती हवा से विनती कर रहा था कि पुनः उसको अपने पितातुल्य वृक्ष के पास पहुंचा दे....
किंतु कीचड़ की बंदिशें हवा के जोर से कहीं ज्यादा मजबूत थीं

सरिता गुप्ता
शाहदरा, दिल्ली
मो. : 9811679001

शर्म नहीं

10वीं परीक्षा के फॉर्म भरे जाने हैं", अध्यापिका ने कक्षा में आकर बच्चों से कहा। 'जिस बच्चे को खड़ा करूं वह अपने पिता का नाम, व्यवसाय तथा वार्षिक आय बताने के लिए अपनी ही सीट पर खड़े होकर ज़वाब देने के लिए तैयार रहें।' अध्यापिका ने क्रम से सभी बच्चों के नाम ले लेकर अपना कार्य करना शुरू कर दिया। सभी बच्चों ने अपने अपने पिता का नाम, व्यवसाय, वार्षिक आय बताकर अध्यापिका की आज्ञा का पालन किया। उसके बाद बबीता का नंबर आया। बबीता ने बताया -"मेरे पिता ठेले पर पर काँच के बर्तन बेचने का काम करते हैं। पिता का नाम राम सिंह है और वार्षिक आय 3000 रूपए है।" सारे बच्चे बबीता के पिता का काम और आमदनी सुनकर आपस में खुसर-फुसर करने लगे... कुछ बच्चे हँसने भी लगे। टीचर की डाँट से पुनः चुप हो गए। घंटी बजी अध्यापिका कक्षा से चली गई।

बबीता की सहेली गीता ने कहा - "तुम टीचर को धीरे से जाकर अपना विवरण दे देती इस तरह सब बच्चों के सामने जोर से कहने की क्या जरूरत थी? तुम्हें शर्म नहीं लगती यह कहते हुए कि तुम्हारे पिता मामूली से ठेले पर बर्तन बेचकर अपना घर चलाते हैं"...बबीता उसी प्रकार बोली - "शर्म की क्या बात है मेरे पिता काम करते हैं किसी से भीख नहीं माँगते। मुझे गर्व है कि मेरे पिता खुद्दार हैं, किसी के सामने झुकते नहीं, उनका कहना है, बुरा समय निकल जाता है मगर दूसरों से ली गई सहायता या अहसान जीवन भर हमारे ऊपर रहता है। पिताजी हमारी जरूरतों के लिए ही यह सब करते हैं। आज भी जो लोग जानते हैं कि उनकी सारी फैक्ट्री तूफान के कारण नष्ट हो गई थी, वे सब ये ही कहते हैं कि रामसिंह इतनी बड़ी फैक्ट्री का मालिक था लेकिन आज छोटा काम करने में कोई संकोच नहीं करता, ...पिता का कहना है व्यक्ति काम से छोटा-बड़ा नहीं होता बल्कि व्यक्ति माँगने से छोटा होता है। अपना काम करने में कोई शर्म नहीं होनी चाहिए। मेरे मां-बाप ने बचपन से मुझे यही सिखाया है। वक्त सबका बदलता है अगर अच्छा समय नहीं रहा तो मुझे विश्वास है दुख के बादल भी जल्दी ही छँट जाएंगे। मुझे अपने माता - पिता के संस्कारों पर गर्व है।"

(Volume-1, issue-1)

(Volume-1, issue-1)

"मानस-भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती
भगवान् ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती"

- मैथिलीशरण गुप्त